

\* ॐ श्रीपरमात्मने नमः \*

# कल्याण

मूल्य ८ रुपये



वर्ष  
८९

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या  
९

विघ्नराज श्रीगणेश





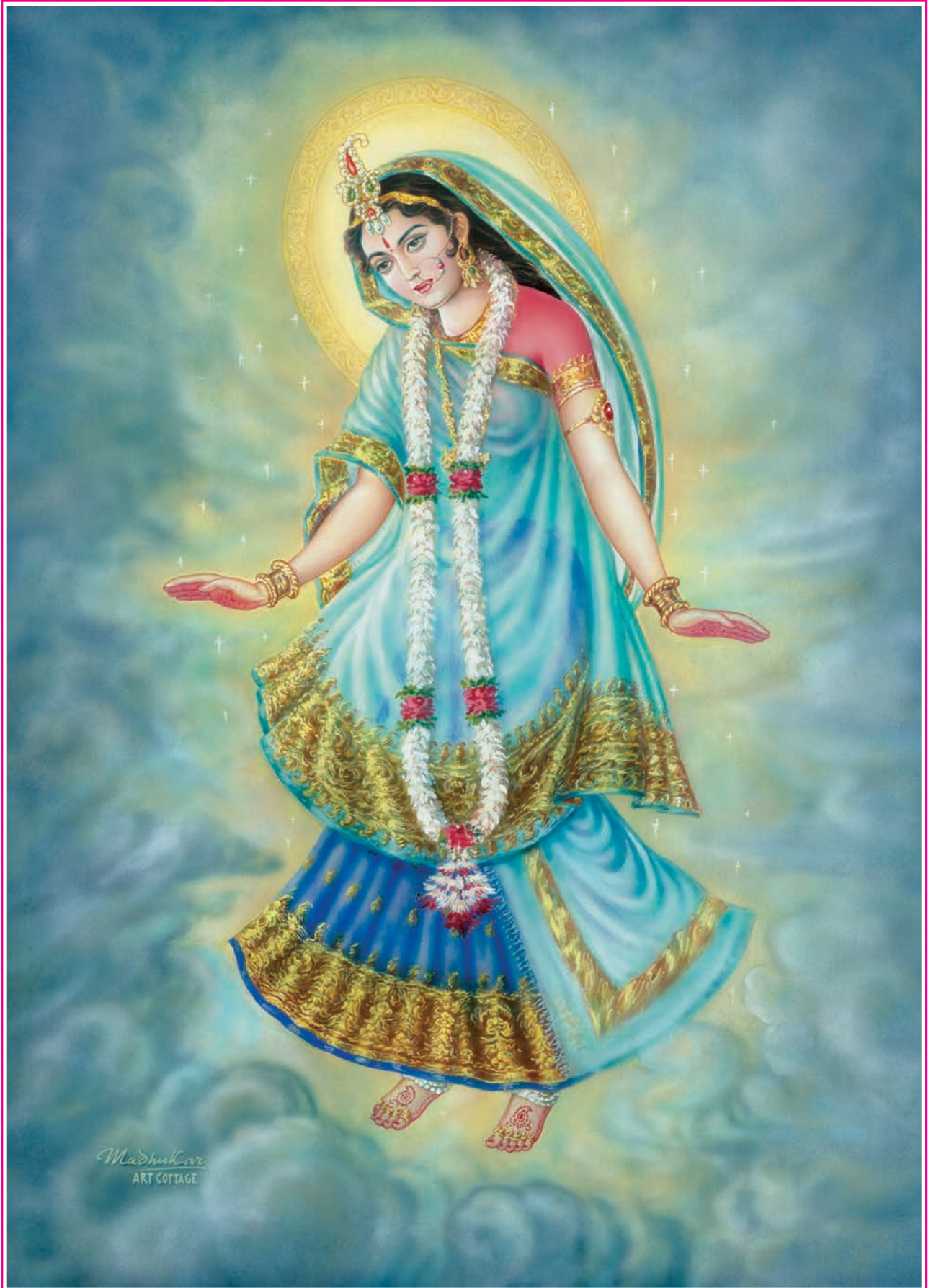
**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**  
  
**By**  
**Avinash/Shashi**

**Icreator of**  
**hinduism**  
**server!**

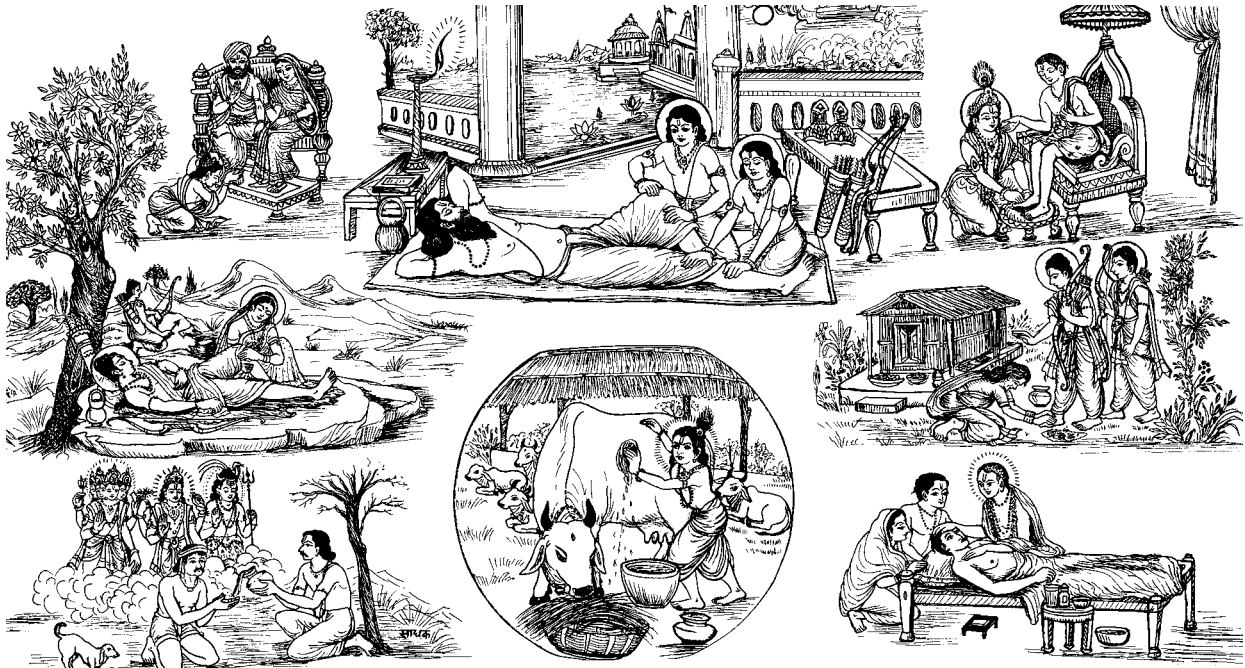




Madhukar  
ART COTTAGE

भगवती श्रीराधाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



# कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।  
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥

वर्ष  
८९

गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, सितम्बर २०१५ ई०

संख्या  
९

पूर्ण संख्या १०६६

## ‘श्रीराधारानी-चरन बंदों बारंबार’

श्रीराधारानी-चरन बंदों बारंबार।

जिन के कृपा-कटाच्छ तें रीझें नंदकुमार॥  
जिन के पद-रज-परस तें स्याम होयें बेभान।  
बंदों तिन पद-रज-कननि मधुर रसनि के खान॥  
जिन के दरसन हेतु नित बिकल रहत घनस्याम।  
तिन चरननि में बसै मन मेरौ आठों जाम॥  
जिन पद-पंकज पर मधुप मोहन-दृग मँड़रात।  
तिन की नित झाँकी करन मेरौ मन ललचात॥  
‘रा’ अच्छर कौं सुनत ही मोहन होत बिभोर।  
बसै निरंतर नाम सो ‘राधा’ नित मन मोर॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २, १५, ०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, सितम्बर २०१५ ई०

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'श्रीराधारानी-चरन बंदों बारंबार' .....	३	१५- सच्चा जीवन-दर्शन	
२- कल्याण .....	५	(श्रीराजेशजी माहेश्वरी) .....	३२
३- सारा समय परमोपयोगी बनानेका साधन		१६- दीनबन्धु कृष्ण [कविता]	
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .....	६	(डॉ० पुष्पारानीजी गर्ग) .....	३३
४- अनन्तमें निवास (श्रीब्रजमोहनजी मिहिर) .....	११	१७- शास्त्रीय दिनचर्याका अनुकरण ही श्रेयस्कर	
५- सब कुछ भगवद्रूप .....	१३	(डॉ० श्रीकमलाकान्तजी तिवारी)	
६- साधक निरन्तर अपनेको देखे (नित्यलीलालीन श्रद्धेय		[प्रेषक—पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री] .....	३४
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)		१८- सन्तवाणी [कविता] [रसिक संत श्रीसरसमाधुरीजी] .....	३६
[प्रेषिका—सुश्री कविता डालमिया] .....	१४	१९- विघ्नराज श्रीगणेश [आवरणचित्र-परिचय] .....	३७
७- सम्मान तथा मधुर भाषणसे राक्षस भी वशीभूत .....	१७	२०- हरखूकी माँ [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)	
८- भक्त किशनसिंहजी [भक्तगाथा]		[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया] .....	३८
(पं० श्रीहरद्वारीलालजी शर्मा 'हिन्दीप्रभाकर') .....	१८	२१- सच्ची भक्ति (श्रीशरदचन्द्रजी पेंढारकर) .....	४०
९- साधकोंके प्रति—		२२- ऊर्जाका अक्षय स्रोत—गोबर गैस	
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) .....	२०	(सर्वोदय विचार परिषद्) .....	४१
१०- पितृ-ऋण [लघुकथा] (श्रीअरविन्दजी मिश्र) .....	२३	२३- गोबरमें भगवती लक्ष्मीका निवास .....	४१
११- तुलसी-साहित्यमें विवाह-संस्कारकी वृहद् व्याख्या		२४- संत उद्बोधन	
(डॉ० नीतू सिंह) .....	२४	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .....	४२
१२- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) .....	२७	२५- साधनोपयोगी पत्र .....	४३
१३- श्रीमद्रामेश्वरम् [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग]		२६- व्रतोत्सव-पर्व [आश्विनमासके व्रतपर्व] .....	४५
(आचार्य श्रीरामरंगजी) .....	२९	२७- कृपानुभूति .....	४६
१४- धर्मानुष्ठानोंमें श्राद्ध, पिण्डदान और गया (डॉ० श्रीराकेशकुमारजी		२८- पढ़ो, समझो और करो .....	४७
सिन्हा 'रवि', एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०) .....	३०	२९- मनन करने योग्य .....	५०

## चित्र-सूची

१- विघ्नराज श्रीगणेश .....	(रंगीन) .....	आवरण-पृष्ठ
२- भगवती श्रीराधाजी .....	( " ) .....	मुख-पृष्ठ
३- ठाकुर किशनसिंहजी .....	(इकरंगा) .....	१९
४- गदाधर भगवान् विष्णु .....	( " ) .....	३०
५- हरखूकी माँकी सेवा करते लेखक .....	( " ) .....	३८

### एकवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ २००

सजिल्द ₹ २२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }  
सजिल्द शुल्क }

वार्षिक US\$ 45 (₹ 2700)

पंचवर्षीय US\$ 225 (₹ 13500)

{ Us Cheque Collection  
{ Charges 6\$ Extra

### पंचवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ १०००

सजिल्द ₹ ११००

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : [www.gitapress.org](http://www.gitapress.org)

e-mail : [kalyan@gitapress.org](mailto:kalyan@gitapress.org)

☎ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु-[www.gitapress.org](http://www.gitapress.org) पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क [kalyan-gitapress.org](http://kalyan-gitapress.org) पर निःशुल्क पढ़ें।

## कल्याण

**देखो**—जीवन क्षणभंगुर है, अभी है, क्षणभर बाद रहेगा या नहीं, पता नहीं। यहाँकी सभी वस्तुएँ ऐसी ही हैं, फिर किस मोहमें पड़कर इस छोटे-से जीवनके लिये इतनी गहरी नींव खोद रहे हो?

**सोचो**—कितने बड़े-बड़े धनी-मानी, ऐश्वर्यवान् और कीर्तिमान् पुरुष चले गये। क्या उनके साथ यहाँकी एक भी वस्तु गयी? फिर क्यों इन नश्वर वस्तुओंके संग्रहकी चिन्तामें अपना जीवन खो रहे हो?

**विचार करो**—रावण-से प्रतापी, हिरण्यकशिपु-से विश्वविजयी और सहस्रार्जुन-सरीखे हाथोंपर धरतीको तौलनेवाले वीर मौतके शिकार हो गये। फिर तुम किस बलपर, किस सिद्धिके लिये जगत्के प्रलोभनमें पड़े इधर-उधर भटक रहे हो?

**याद करो**—तुम्हारे पिता-पितामहका घरमें कितना रोब-दाब था। घरके सब लोग उनसे संकोच करते थे, डरते थे, उनकी आज्ञाके विरुद्ध कोई चूँतक नहीं करता था। आज कहाँ है उनका वह प्रभुत्व? उनकी कोई याद भी नहीं करता। यही दशा तुम्हारी भी होगी। फिर क्यों इस घरके पीछे पागल हो रहे हो?

**देखो**—तुम्हारा यह यौवन, यह रूप, यह सम्मान और यह धन सदा नहीं रहेगा। ये सभी वस्तुएँ नष्ट होनेवाली हैं और तुमसे निश्चय ही इनका वियोग होगा। फिर क्यों इनके लिये चक्करमें पड़े पिस रहे हो?

**सोचो**—यहाँके दो दिनके जीवनमें तुम्हारा बड़ा नाम हो गया या लोग तुम्हें बहुत मानने लगे तो क्या हुआ? तुम्हारा यह शरीर और यह नाम—जिसको लोग पूजते और मानते हैं, कितने दिनोंका है? फिर क्यों इस नाम-रूपकी प्रतिष्ठामें अपनेको नष्ट कर रहे हो?

**विचार करो**—तुम्हारा जीवन तभी सफल होगा, जब तुम इस जन्म-मृत्युके भयानक चक्रसे छूटकर अक्षय परम शान्तिको प्राप्त कर लोगे। वास्तवमें उसी सनातनी शान्तिको पानेके लिये ही तुमने मानव-शरीर धारण किया है। यदि तुम उस ओर नहीं चले तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ ही चला जायगा। समय जा रहा है, फिर तुम क्यों नहीं चेत करते?

**याद करो**—तुमने गर्भवासमें प्रतिज्ञा की थी और रो-रोकर प्रभुसे कहा था कि 'इस जीवनको मैं आपके स्मरण-भजनमें ही लगाऊँगा। दूसरा कोई काम करूँगा ही नहीं।' अब उस प्रतिज्ञाको भूलकर मिथ्या माया-ममतामें फँसकर फिर उसी भीषण गर्भवासकी यन्त्रणा भोगनेकी तैयारी क्यों कर रहे हो?

**चेतो**—शीघ्र चेतो। कहीं जीवनके दिन यों ही बीत गये तो फिर पछतानेसे कुछ भी काम नहीं निकलेगा। अरे, क्यों हाथ लगे स्वर्ण-सुयोगको खो रहे हो?

**देखो**—अबतक जो भूल हो गयी, सो हो गयी; उसके लिये रोनेसे कोई लाभ नहीं है। जीवनके जितने दिन बाकी हैं, उन्हींको दृढ़ संकल्प करके भगवान्के भजनमें लगाकर जीवनको सफल कर लो। ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलनेका। इस परम लाभको प्राप्त करनेमें क्यों इतना आलस्य कर रहे हो?

**सोचो**—जबतक शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियाँ सशक्त हैं, मन प्रबुद्ध है तथा बुद्धि काम देती है, तभीतक तुम इन्हें अपने लक्ष्यकी ओर लगाकर जीवनको सफल करनेका प्रयत्न कर सकते हो। इन सबके असमर्थ होनेपर कुछ भी नहीं कर सकोगे। फिर क्यों देर कर रहे हो?

‘शिव’

## सारा समय परमोपयोगी बनानेका साधन

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

मनुष्यके समयके तीन विभाग माने जा सकते हैं— १. साधनकाल, २. व्यवहारकाल, ३. शयनकाल। इनमेंसे साधनकालको लोग सात्त्विक, व्यवहारकालको राजस और शयनकालको तामस मानते हैं, किंतु कल्याणके इच्छुक मनुष्योंको तो तीनों कालोंको ही परम सात्त्विक बनाना चाहिये। हमलोगोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हमारा सारा-का-सारा समय उत्तम-से-उत्तम कार्यमें लगे। दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें चाहे हमारे ये तीनों काल अलग-अलग प्रतीत हों, किंतु वास्तवमें हमारा सारा समय एक परमात्मामें ही लगा रहना चाहिये।

यह मनुष्य-शरीर अपने उद्धारके लिये मिला है या यों कहें कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। अतः जिससे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र हो, उसी काममें हमारा सारा समय बीतना चाहिये। प्रत्येक समय हमारा परम साधन ही होता रहे। दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, निद्रा, आलस्य और प्रमादमें एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिये; क्योंकि ये सभी तामस हैं। ऐश-आराम, स्वाद-शौक, शृंगार, भोग-विलास, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, कंचन, कामिनी, सम्पत्ति—इन सबमें जो ममता, आसक्ति, कामना आदि हैं, ये सभी राजस हैं। अतः इनके संसर्गमें भी अपना समय व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। प्रत्युत ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सदाचार और सद्गुणोंके सेवनमें ही समय जाना चाहिये। एकान्तमें साधनकाल, व्यवहारकाल और शयनकाल सभी कालोंका सुधार विशेषरूपसे करना चाहिये।

१. एकान्तमें बैठकर अपने अधिकारके अनुसार पूजा-पाठ, जप-ध्यान, स्तुति-प्रार्थना, सन्ध्या-गायत्री, स्वाध्याय आदि जो कुछ भी साधन किया जाय, उसके अर्थ और भावको समझते हुए मन लगाकर श्रद्धा, विश्वास और प्रेमपूर्वक गुप्त और निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर करना चाहिये।

२. चलते-उठते-बैठते, खाते-पीते, न्यायोचित व्यवहार करते समय मनसे भगवान्‌के चारित्रिक स्मरण

करते हुए और उनका अनुकरण करते हुए एवं श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे भगवान्‌के नाम, रूप तथा गुण-प्रभावका चिन्तन करते हुए उनकी प्रसन्नताके अनुकूल ही सब व्यवहार करना चाहिये।

३. रात्रिमें शयनके समय सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहसे रहित होकर मनमें भगवान्‌के तत्त्व-रहस्यको समझते हुए, भगवान्‌के गुण, प्रभाव, नाम, रूपके निष्कामभावपूर्वक चिन्तनका प्रवाह बहाते हुए ही शयन करना चाहिये।

मनकी आदत बिगड़ी हुई है। यह स्वाभाविक ही राजस और तामस भावों और पदार्थोंका चिन्तन करने लगता है। अतः इसकी प्रत्येक समय चौकसी (सँभाल) रखनी चाहिये। जैसे कोई सालभरका छोटा बच्चा चाकू, कैंची आदि कोई भी पदार्थ हाथमें आ जाता है तो उसे पकड़ लेता है; क्योंकि वह उसके परिणामको समझता नहीं है, किंतु माता उसे भय दिखलाकर, लोभ देकर या प्रेमसे समझाकर उससे कैंची, चाकू आदि छीन लेती है। इसी प्रकार साधक अपने मनको इस लोक और परलोकके दुःखोंका भय दिखलाकर, 'भक्ति, ज्ञान, वैराग्य रसमय—अमृतमय है'—ऐसा लोभ देकर या विवेकपूर्वक समझाकर राजस और तामस क्रियाओं पदार्थों और भावोंसे हटा ले एवं परम कल्याणदायक, परम सात्त्विक उत्तम गुण, क्रिया, पदार्थ और भाव आदिमें लगाये।

कोई भी घटना, पदार्थ और परिस्थिति अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरके अनुकूल या प्रतिकूल प्राप्त हो तो उसमें हर्ष-शोक, राग-द्वेष आदि विकारोंसे रहित रहना चाहिये। किसी भी घटना, पदार्थ या परिस्थितिके प्राप्त होनेपर ज्ञानयोगकी दृष्टिसे तो उसे स्वप्नवत् माने, भक्तिकी दृष्टिसे उसे भगवान्‌का विधान या लीला माने और कर्मयोगकी दृष्टिसे उसे अपने पूर्वकृत कर्मोंका

फलरूप प्रारब्ध माने एवं ऐसा मानकर सदा निर्विकार रहे, किंतु यदि अपने साधनके विरुद्ध कोई पदार्थ या







प्रह्लादजीकी भक्तिके कारण जब भगवान् प्रकट हुए, तब उन्होंने प्रह्लादजीसे वर माँगनेके लिये बार-बार कहा, फिर भी उन्होंने भगवान्से किसी बातके लिये भी प्रार्थना नहीं की, किंतु पिताके लिये प्रार्थना की कि 'पिताने आपके प्रभावको न जानकर आपकी बड़ी निन्दा की है और आपकी भक्ति करनेके कारण मुझसे भी द्रोह किया है। यद्यपि वे आपकी दृष्टि पड़नेसे ही पवित्र हो गये, फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उस महान्



इस प्रकार साधन करनेवाले मनुष्यसे यदि कोई कहे कि आपके चित्तमें जो प्रसन्नता-शान्ति रहती है, धैर्य-उत्साह रहता है तथा थकावट, उकताहट या और कोई भी हर्ष-शोक, राग-द्वेषादि विकार नहीं होते, इसमें क्या कारण है, तो उसमें साधकको यही मानना और यही उत्तर देना चाहिये कि यह भगवान्‌की कृपा है। अतएव अपने ऊपर भगवान्‌की कृपा समझते हुए भगवान्‌को प्रत्येक समय अपने मनके सामने रखकर भगवान्‌के रुख, मन और सिद्धान्तका ध्यान करता रहे। यदि कहें कि भगवान्‌के रुखका हमें कैसे पता लगे तो इसका उत्तर यह है कि सेवा-भावके प्रतापसे साधकको उसी प्रकार भगवान्‌के रुखका पता लगता रहता है, जैसे पतिव्रता स्त्रीको सेवाभावके कारण पतिके रुखका पता लगता रहता है। इसलिये जिसमें भगवान् प्रसन्न हों, जो भगवान्‌के मन और सिद्धान्तके अनुकूल हो, वही कार्य करना चाहिये, फिर अप्रसन्नता, अशान्ति, दुःख, उकताहट, थकावट आदि तथा अन्य किसी प्रकारके विकार नहीं हो सकते। इस प्रकार साधन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति

सदा सदा MADE WITH LOVE BY Avinash/Shr



## अनन्तमें निवास

( श्रीब्रजमोहनजी मिहिर )

नीलोज्ज्वल आकाश असीम है। प्रकृतिकी शोभा मनोरम है। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ हम विस्तृत आकाशको न देखते हों। जहाँ देखिये, वहीं इसकी शोभाकी अनोखी छटा फैली हुई है। प्रकृतिके ऐसे अनुपम दृश्यको देखकर हम मुग्ध हो जाते हैं। हमारा रोम-रोम आनन्दमें निमग्न हो जाता है। ऐसी सौन्दर्यशालिनी आनन्दप्रदात्री प्रकृतिके बीच रहकर हम आनन्दकी चर्चा न करें तो और किसकी करें, लेकिन इसके साथ थोड़ी कठिनता भी है। हमारे बाहर प्रकृतिका स्थूल सौन्दर्य है। हमें भाँति-भाँतिके सुन्दर शरीर, अनेक प्रकारकी विचित्र वस्तुएँ अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं, लेकिन हमारे पास सूक्ष्म आनन्द भी है, जो स्थूल सौन्दर्यसे कहीं अधिक आकर्षक है। स्थूल वस्तुको हम देखते हैं, समझते नहीं, इसलिये उसकी ओर हमारा मन शीघ्र दौड़ जाता है। सूक्ष्म वस्तु मनके अन्दर समाहित रहती है। उसमें निवास करनेके लिये समझकी आवश्यकता होती है, स्थूल पदार्थोंसे मनको हटानेकी आवश्यकता होती है। सूक्ष्ममें निवास करनेके लिये केवल एक ही उपाय है कि आप अपनेको बिलकुल भूल जायँ और सदा एक-से प्रतीत होनेवाले आन्तरिक आनन्दमें डूब जायँ। ऐसा नहीं है कि हममेंसे कोई इसपर विश्वास न करता हो, लेकिन कुछ लोगोंमें इसे प्राप्त कर लेनेकी लगन अधिक होती है। जिनमें लगनकी कमी है, उनके लिये भी एक ऐसा समय आयेगा, जब वे अपने अन्दर उस आवाजको सुनेंगे और उसका अनुसरण करेंगे। इस आवाजको सुनकर ऐसा हो नहीं सकता कि आप माया-मोहका त्याग न कर दें। यही हुआ है और यही हो रहा है। यह आज्ञा समयपर हममेंसे सबोंको प्राप्त होगी और हमें तदनुसार चलना होगा। विकास-क्रममें यह बात होकर रहती है, लेकिन भिन्न-भिन्न शर्तोंमें। क्या आप विचार कर सकते हैं कि इसके आगमनके समय आपकी

क्या दशा रहेगी? आपके क्या भाव रहेंगे? कैसे आप इसका स्वागत करेंगे? इन सब बातोंका अभिप्राय क्या हो सकता है? अपने शरीरके आरामको छोड़ देना, या संसारके और नातों-रिश्तोंको छोड़ देना उतना कठिन नहीं है, जितना कि अपनी अहंता (मैंपन)-को मिटा देना और 'मैं और तुम' के भेद-भावको भूल जाना है। यह विचार बहुत गम्भीर है, बहुत कठिन है, लेकिन अन्दरसे भेद-भावके मिटे बिना शान्ति कभी नहीं मिल सकती, हृदयमें पवित्रता नहीं आ सकती। अपनी अहंताको भुलाकर आत्माका एकीकरण कर लेना बहुत ही पवित्र कार्य है। आत्मसाक्षात्कार हो जानेका यह अभिप्राय है कि अन्दरका राग-द्वेष, पूर्वानुराग, किसी मुख्य वस्तुमें रुचि तथा और किसी प्रकारके वैषयिक भावोंका तिरोभाव हो जाना चाहिये। बात तो यह बहुत कठिन है, लेकिन इसे करना होगा। तुम क्या हो, इसे बिलकुल भूलकर उसकी तरह हो जाना होगा।

हमारे सामने बहुत ही बड़ा विस्तृत क्षेत्र है। इस बड़े-से क्षेत्रको हम एक छोटी-सी चीजमें छिपानेकी कोशिश करते हैं। ठीक इसी प्रकार कुछ थोड़ी-सी छोटी-छोटी बातोंका त्याग करके हम यह सोचते हैं कि हमें सफलता मिल गयी। कुछ बातोंके छोड़ देनेसे कुछ नहीं होता; चीजोंको तो त्यागनेकी भी हमें कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो छोटी पहाड़ीके सामने खड़े रहनेके समान है। यदि हम पहाड़के उच्च शिखरका दर्शन करना चाहते हैं तो हमें उस छोटी पहाड़ीके सामने खड़े नहीं रहना होगा बल्कि वहाँसे आगे बढ़कर तेजीके साथ चलना होगा। अपनी साधारण रुचि, साधारण भक्ति-भाव या पूजा-पाठमें ही लगे रहनेसे काम नहीं चलेगा। चन्द्रोदयके पूर्व असंख्य नक्षत्र आकाश-मण्डलमें चमकते रहते हैं। चन्द्रमाके निकल आनेके बाद सब नक्षत्र फीके पड़ जाते हैं और उसके स्वागतके लिये मार्ग

ऐसी वस्तुका अनुसरण करो, जो अनन्त है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसकी प्राप्तिमें ही जीवनकी पूर्णता है। उसको प्राप्त कर लेनेके पश्चात् जीवनका उद्देश्य समाप्त हो जाता है। जबतक हमारा ध्यान स्थल

आजकल हम लोगोंका ध्यान अकेलेपन, पारस्परिक मित्रता और प्रेमकी ओर अधिक रहता है। इस विचारसे हम भयभीत हो जाते हैं कि हमारे प्राचीन संस्कारोंका अन्त हो जाता है। ये वस्तुएँ अच्छी हैं, कुछ समयके लिये हमें ये प्रसन्न कर देती हैं, इनकी भी कीमत है, लेकिन अनन्त आनन्दको प्राप्त कर लेनेपर हमें इनका अभाव नहीं प्रतीत होगा। पहले हम अपनी इन्द्रियोंके सुखमें ही सुख मानते थे। आनन्दमें निवास आरम्भ हो जानेके पश्चात् संसारकी प्रत्येक वस्तुके साथ पार्थक्यका भाव मिट जाता है। फिर आकाश, घास, वृक्ष, पशु-पक्षी भी अपने-दो जाते हैं।

यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सब-के-सब भगवान्‌के शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् प्रकट हैं। ऐसा समझकर वह जो कोई भी उसके सामने आ जाता है—चाहे वह प्राणी हो या अप्राणी—उसे अनन्यभावेसे—भगवद्भावेसे प्रणाम करता है। [ श्रीमद्भागवत ]



## साधक निरन्तर अपनेको देखे

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

साधकको निरन्तर आत्म-निरीक्षण करना है, अपने-आपको देखना है। कौन क्या कर रहा है, कहाँ जा रहा है, इसे देखना साधकका काम नहीं है। यह आचार्यका काम है, उपदेशकका काम है अथवा व्यवसायीका भी काम है या जो संत-महात्मा जगत्पर स्वाभाविक अमृत-वर्षा करते रहते हैं, उनका काम है। वे लोग जगत्के दुःखोंसे दुखी होकर, कहाँ-कहाँ दुःखके क्या-क्या कारण हैं, उन्हें जानकर मिटानेका उपाय बताया करते हैं। पर साधकको तो अपने-आपको निरन्तर देखना है, वह कहाँ है, कहाँ जा रहा है, उसके मार्गका लक्ष्य क्या है? कहीं वह गिर तो नहीं रहा है? रुक तो नहीं रहा है? विपरीत दिशामें तो नहीं जा रहा है। यह उसके देखनेका काम है, परंतु यदि हम बाहरसे पुण्यात्माका वेष तथा नाम रखकर बाहरसे पुण्यदेशमें भी रहते हैं और अन्तरको भगवान्के साथ जोड़ना नहीं चाहते, तो यह मानना चाहिये कि हम ठीक रास्तेपर नहीं हैं, हम साधक नहीं हैं।

साधकके देखनेकी पहली बात यह है कि हमारा मन विषयोंकी ओर जा रहा है या भगवान्की ओर। यहींसे साधककी परीक्षा आरम्भ होती है। जिसका मन विषयोंसे हट-हटकर बार-बार भगवान्की ओर जाय, समझना चाहिये कि वह उन्नतिकी ओर जा रहा है। विषयोंमें जानेका न मालूम कितने जन्मोंका अभ्यास है। पर उसकी नियत बुरी नहीं है, वह बार-बार भगवान्की ओर लगता है तो वह ठीक रास्तेपर है। वह जा रहा है। वह मार्गकी ओर मुड़ गया है। वास्तवमें सबसे पहले साधकको जीवनकी गतिको मोड़ना है। विषयाभिमुख जीवनको मोड़कर भगवान्के सामने करना है। चाहे हम त्याग भी करें, पर त्यागमें यदि कीर्तिकी इच्छा हो गयी तो वह त्याग भोग है। यदि भोगकी ओर हमारे जीवनकी समुत्थिता है तो हम ठीक रास्तेपर नहीं हैं। पर यदि

जीवन भगवान्‌के सम्मुख हो गया तो चाहे देर लगे तो भी वह मार्गपर है। देर लगेगी नहीं, भगवान्‌का विरद है। **‘जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं’, ‘क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।’** पर चाहे देर लगे तो भी वह मार्गपर है, वह विपरीत मार्गपर नहीं है, वह ठीक रास्ते चल रहा है। भोगोंसे विरक्ति बढ़नी प्रारम्भ हो जाय और भगवान्‌में तथा भगवद्विषयमें अनुरक्ति बढ़नी आरम्भ हो जाय, यह सीधी कसौटी है। साधक अपने-आप अपने मनमें देख लें कि यदि हमारी चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर अधिक बढ़ रही है तो समझना चाहिये कि हम विषय-जगत्‌में ही रह रहे हैं, चाहे हमारे रहनेके स्थानका नाम मन्दिर है, सत्संगभवन या गीता-भवन कुछ भी है। वास्तवमें तो हमारे अन्दरका भवन हमें देखना है।

तेरे भावें जो करो भलो बुरो संसार।

नारायण तू बैठ के अपनो भवन बुहार॥

इसी भवनमें झाड़ू लगाओ। इसे साफ करो। इसकी मलिनताको दूर करो। इसके कूड़े-करकटको बाहर फेंको। इस अन्दरके कूड़ेको लेकर कहीं झाड़ने जाओगे तो कूड़ा बिखेरोगे। तुम्हारे पास जो होगा वही तो दोगे। राग-द्वेष-युक्त पुरुष यदि कहीं उपदेशके क्षेत्रमें जा पहुँचे तो राग-द्वेष ही देगा। वह शिव-विष्णुकी लड़ाई करा देगा। साधक अपने मनको इस कसौटीपर कसता रहे कि भगवान्की ओर अनुराग बढ़ रहा है या नहीं। यदि भोगोंकी ओरसे मुख नहीं मोड़ेंगे और चलना प्रारम्भ करेंगे तो उलटे ही जायँगे। बदरीनारायण जानेके लिये लक्ष्मणझूलेकी ओर मुख नहीं किया और ऋषिकेशकी ओर मुख कर लिया तथा चलना शुरू कर दिया। जहाँ तुम जानेकी बात कहते हो, उस ओर तो तुम्हारा मुख ही नहीं है, तुम जाओगे कैसे? इसलिये अपने जीवनको भगवान्के सम्मुख कर लेना, यह साधकका पहला काम है। एक दृष्टान्त है कि एक बार माणिकगंगाघाटपर

काशीके कुछ लोगोंने एक नाव भाड़ेपर की। गर्मीका मौसम था, रातका समय था, काशीमें जरा भाँग छाना करते हैं। मल्लाहोंने और यात्रियोंने भी भाँग पी रखी थी। अपना ढोलक लेकर रातको गाते-बजाते हुए बैठ गये, चाँदनी रातमें प्रयाग जायँगे—यह तय किया और नाव चल पड़ी। पूरी रात बीत गयी, सबेरा हुआ, नशा उतरा तो देखा कि यह तो मणिकर्णिकाघाट ही है, कहीं आगे नहीं बढ़े। मल्लाहोंसे पूछा कि 'क्या तुम सो गये थे? खेया नहीं? नाव तो वहीं खड़ी है।' तबतक मल्लाहोंका भी नशा उतर चुका था। उन्होंने उत्तर दिया कि 'खेते-खेते तो हमारे हाथ दुखने लगे। रातभर डाँड़ चलाया है।' देखनेपर पता चला कि रस्सा ही नहीं खोला था, डाँड़ चलाते रहे, पर किनारेपर नाव बँधी रही। डाँड़ खेनेमें हाथोंमें दर्दके अतिरिक्त कुछ मिला नहीं। नाव एक कदम भी आगे नहीं बढ़ी। इसी प्रकार भगवान्के सम्मुख न होकर हम जो साधन करते हैं, वह साधन नहीं होता, डाँड़ ही खेना रहता है। साधकको सबसे पहले अपने जीवनकी दिशा बदलनी है। अपनेको भगवान्के सम्मुख करना है। इसका अर्थ पहले लक्ष्यको ठीक करना है। हमें यहाँसे मुम्बई जाना है, यह पहले तय करें। स्टेशनपर जाकर पता लगायें कि कौन-सा रास्ता ठीक है, किसमें भाड़ा कम लगता है, कौन शीघ्र पहुँचता है, किसमें सुविधा है, हमारे उपयुक्त कौन-सा मार्ग है, हम उसमें जा सकते हैं कि नहीं? अपना अधिकार, अपनी रुचि सब देखकर हमें तय करना है। चाहे योगमार्ग हो अथवा भक्तिमार्ग हो या ज्ञानमार्ग, किसीसे जायँ। रास्ते अनेक हैं, पर पानेकी वस्तु एक है, परंतु जबतक जाना कहाँ है यह ही तय नहीं, बुकिंग क्लर्कके सामने जाकर खड़े होकर टिकट माँगे, वह कहाँका टिकट दे? हमें सबसे पहले तय करना है कि भगवान्के मार्गमें जाना है, हमें भगवान्को पाना है, यह तय करके अपने जीवनको उधर मोड़ लें। हमलोग कहते हैं कि हमें लगे ३० वर्ष या ५० वर्ष हो गये, पर सच्ची बात यह है कि रस्सी तो वहीं बँधी है। भगवानका नाम

लेंगे, मन दुकानमें ही है। अपने-आपको पहले जीवनके उद्देश्यमें स्थिर करना है।

आरम्भमें दो बात देखनी होगी कि कहीं हम प्रमाद न कर बैठें और कहीं उलटे रास्ते न पड़ जायँ। रास्तेकी किसी चीजको देखकर उसमें फँस जाना प्रमाद है। करनेयोग्य कार्य न करना, न करनेयोग्यको करना, इसे शास्त्रमें प्रमाद कहते हैं। प्रमाद न करें। कहीं वह रास्ता न छोड़ दें। दूसरी बात है कि कहीं बुरे संगमें आकर लौट न चलें। यद्यपि भगवान्की ओर आगे बढ़नेवाला लौटता नहीं, यह बात ठीक है। जो भगवदाश्रयी होता है वह नहीं लौटता, परंतु जो अपने साधनके भरोसे है, वह लौट जाता है। वेदान्तके आचार्योंने भी अकृतोपासक तथा कृतोपासकका भेद बतलाया है। जो भगवान्की उपासना करते हुए चलते हैं, उनके विघ्नोंका नाश होता है और जो उपासनारहित चलते हैं, उनका कोई सहायक नहीं रहता। शास्त्रोंने ऐसा माना है कि यदि गुरु या परमात्माका आश्रय लेकर उनकी उपासना करते हुए चले, तो मार्ग निर्विघ्न कटेगा। जो भगवान्की उपासनाको साथ लिये हुए चलते हैं, वे साधनसे प्रायः नहीं गिरते और जो केवल अपने बलपर चलते हैं, उनमें एक अभिमान उत्पन्न हो जाता है। भगवान्ने श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी ।

ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥

( ७ । १३ । छं० ३ )

यह ज्ञानाभिमनियोंके लिये कहा है। ज्ञान हुआ नहीं और ज्ञानका अभिमान हो गया। अच्छे कर्मोंके कारण देवदुर्लभ पद मिल गया, अधिकार मिल गया, पर वहाँसे फिर गिरना पड़ेगा। दूसरी ओर कहा है—

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।

जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे ॥

( ୭ । ୧୩ । ଛଂ ୩ )

वेद-स्तुति है—‘हे नाथ! जो लोग विश्वास करके  
अन्य समस्त आशाओंका परित्यागकर तुम्हारे दास हो





ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

हैं। यह भी बड़ी भारी रुकावट होती है। साधनका जहाँ अभिमान आया, वहाँ दूसरेमें तुच्छबुद्धि हो जाती है। दूसरोंमें यह भाव रखे कि सब भगवान् हैं। भंगी भी भगवान् है, जब भंगी झाड़ू लिये सामने आये तो भगवान्का रूप समझकर प्रणाम कर ले। मन-ही-मन कहे—‘आप इस समय इस वेषमें हैं, मैं दूसरे वेषमें हूँ। इस समय आप दूसरी लीला करेंगे तो उस लीलाके होते समय भी मैं भूलूँ नहीं कि आप मेरे सरकार हैं, मेरे नाथ हैं।’ साधक किसीको नीचा न समझे। साधकके लिये विद्या, धन, वर्ण, वर्ग, जाति, साधन, भक्ति एवं ज्ञानका अभिमान बाधक है, ये साधनाके विघ्न हैं। इन अभिमानोंसे दूर रहें। अपने-अपने स्वाँगका बरतना ही वर्णाश्रमका पालन है। अपने स्वाँगसे हटे नहीं, दूसरेको नीचा माने नहीं, सबमें भगवान् देखे, कुत्तेमें तथा नरकके कीटमें भी भगवान् हैं। अतः किसीसे भी घृणा न करे। किसीको भी नीचा न माने। दूसरेके पापकी ओर न देखे। अपने दोषको देखे। अपनी भूलें देखे और अपने-आपको ठीक करनेमें निरन्तर रात-दिन लगा रहे। यह नहीं होना चाहिये कि घड़ी, आधी घड़ी बैठे, फिर छोड़ दे।

प्रायः यही होता है कि सत्संग भी करते हैं, पाठ भी करने बैठते हैं। पूरा कर लेते हैं, पुनः उसी विषय-सेवनमें लग जाते हैं। जितना विषय-सेवन होगा, उतने

उसीके संस्कार बनते रहेंगे। भगवान्‌के संस्कार नहीं आयेंगे। भगवान्‌को तो रात-दिन पकड़े रहना चाहिये, सदा भगवान्‌की ही पूजा करें। प्रातःकाल सोकर उठनेपर भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—‘भगवन्! आज प्रातःसे सायंतक तथा सायंसे फिर प्रातःतक जो कुछ मैं करूँ, केवल आपकी पूजा ही करूँ।’ यह साधकका जीवन है। साधक दिन-रात अपनेको सावधानीके साथ भगवान्‌के प्रति जोड़े रखे, यही धर्म है। उलटे मार्गपर आ जाय तो फिर सावधान होकर दृढ़ताके साथ ठीक रास्तेपर आये। भगवान्‌की कृपा-भिक्षा चाहे। फिर चल पड़े, चलता जाय, तो पहुँच जायगा। मनचाहे भोग नहीं मिलेंगे; क्योंकि वे कर्मके फल हैं। भगवान् मनचाहे आपको मिलेंगे; क्योंकि वे हैं और आपके स्वरूप हैं। भगवान् हैं, आपके अधिकारकी चीज हैं, निरन्तर आपके साथ रहते हैं। आपको छोड़ नहीं सकते। भगवान्‌का मिलना निश्चित है और सहज है, भोगका मिलना अनिश्चित और बड़ा कठिन है। अतः साधक भोगोंकी ओर न देखकर निरन्तर भगवान्‌की ओर विश्वासपूर्वक देखे कि भगवान् (मिलेंगे) मिले हुए हैं, इस प्रकार रात-दिन भगवान्‌का चिन्तन करे। यह साधनाका स्वरूप है।

[ प्रेषिका—सश्री कविता डालमिया ]

**सम्मान तथा मधुर भाषणसे राक्षस भी वशीभूत**

एक बार एक बुद्धिमान् ब्राह्मण एक निर्जन वनमें घूम रहा था। उसी समय एक राक्षसने उसे खानेकी इच्छासे पकड़ लिया। ब्राह्मण बुद्धिमान् तो था ही, विद्वान् भी था; इसलिये वह न घबराया और न दुखी ही हुआ। उसने उसके प्रति सामका प्रयोग आरम्भ किया। उसने उसकी प्रशंसा बड़े प्रभावशाली शब्दोंमें आरम्भ की— ‘राक्षस! तुम दुबले क्यों हो ? मालूम होता है, तुम गुणवान्, विद्वान् और विनीत होनेपर भी सम्मान नहीं पा रहे हो और मूढ़ तथा अयोग्य व्यक्तियोंको सम्मानित होते हुए देखते हो; इसीलिये तुम दुर्बल तथा क्रुद्ध-से रहते हो। यद्यपि तुम बड़े बुद्धिमान् हो तथापि अज्ञानी लोग तुम्हारी हँसी उड़ाते होंगे—इसीलिये तुम उदास तथा दुर्बल हो।’

इस प्रकार सम्मान किये जानेपर राक्षसने उसे मित्र बना लिया और बड़ा धन देकर विदा किया।

(महा० शान्तिपर्व, आपद्धर्म)



‘मनुष्यको चाहिये कि आठ महीनेतक खूब परिश्रम करे, जिससे वह वर्षाऋतुमें सुखपूर्वक खा सके, दिनभर इसलिये परिश्रम करे कि रातमें सुखकी नींद सो सके, जवानिमें बुढ़ापेके लिये संग्रह करे और इस जन्ममें परलोकके लिये प्रयत्न करे।’

## साधकोंके प्रति—

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

### [ स्वार्थ-अभिमानरहित सेवा ]

एक ही शरीरके अनेक अवयव हैं। जैसे—हाथ हैं, पैर हैं, इन्द्रियाँ हैं, प्राण हैं, मन है, मस्तिष्क आदि हैं। ये सब शरीरके निर्वाहके लिये काम करते हैं। सब अवयवोंके काम अलग-अलग हैं। हाथका काम लेने-देनेका है। पैरोंका काम चलना है। इन्द्रियोंका काम भी अलग-अलग है। प्राणोंके कार्य अलग-अलग हैं। मन-बुद्धिके काम अलग-अलग हैं। जैसे अलग-अलग काम करते हुए सभी अंग सबके हितमें लगे हुए हैं, इसी तरह अनेक प्राणी अलग-अलग काम करते हुए समाजके हितके लिये ही हैं। इसलिये उन सबको संसारके हितमें ही लगे रहना चाहिये।

हम जहाँ अपने स्वार्थके लिये काम करते हैं, वहीं भूल होती है। मान लो, हाथ केवल अपने लिये काम करें, पैर केवल अपने लिये काम करें, आँखें अपने लिये काम करें, कान अपने लिये काम करें तो ऐसी दशामें शरीरका निर्वाह नहीं होगा अर्थात् पैर कहें कि हम अपना ही काम करेंगे, शरीरको उठाये क्यों फिरे? हम शरीरको क्यों उठायें? हम हाथोंको क्यों उठायें? तो ऐसे शरीरका काम नहीं चल सकता, अंगोंका काम नहीं चल सकता। इसी तरह स्वार्थवश होकर यदि प्रत्येक प्राणी अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहे तो संसारका काम नहीं चल सकता; क्योंकि सभी प्राणी संसारके अवयव हैं—शरीर हैं।

शरीर किसी भी रीतिसे संसारसे अलग सिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् बनावटकी दृष्टिसे, धातुकी दृष्टिसे, संरक्षककी दृष्टिसे, किसी भी रीतिसे अलग सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे, एक शरीरके अवयवोंकी आकृति, उनके कर्म अलग-अलग होते हुए भी वे सभी एक शरीरके अंग हैं, वैसे ही संसारमें छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं, वे सभी एक विराट् शरीरके अंग हैं। विराट्

शरीरके अंग होकर वे विराट् शरीरके हितके अतिरिक्त अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करते हैं तो भूल करते हैं।

पशु-पक्षियोंमें यह विवेक नहीं है कि वे अपना स्वार्थ सिद्ध करें अथवा न करें; पर मनुष्योंको भगवान्ने विवेक दिया है। इसलिये साधकोंके मनमें यह विचार आता है कि हम अपना ही स्वार्थ कैसे सिद्ध करें? परंतु स्वार्थरत मनुष्य अपने कुटुम्बके पालनमें ही लगे रहते हैं। उदारचरित पुरुषोंकी दृष्टिमें सारी वसुधा ही अपना कुटुम्ब है—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

‘यह अपना है, यह पराया है, ऐसी गिनती तो तुच्छ विचारवाले पुरुषोंकी होती है। जिनके हृदयके भाव तुच्छ हैं, जो स्वार्थरत हैं, उन लोगोंकी ऐसी भावना होती है। उदार भावनावाले पुरुषोंके लिये सारा संसार ही कुटुम्ब है।’ जैसे, अपने घरमें रहनेवाले पारिवारिक सदस्य अपने कुटुम्बी हैं, ऐसे ही उनकी दृष्टिमें कोई भी प्राणी हो, चाहे वह स्थावर हो या जंगम, वह अपने कुटुम्बका है—वास्तवमें यही मानवता है।

शास्त्रोंमें आया है कि घरमें रहनेवाली चींटियाँ, मक्खियाँ, चूहे सभी हमारे कुटुम्बी हैं। वे भी उसे अपना घर मानते हैं। चिड़ियाँ जहाँ अपना घर बनाती हैं, वहाँ वे दूसरी चिड़ियोंको नहीं रहने देतीं। सोचिये, एक घरमें कितने घर हैं? सबका अपना-अपना घर है। अपना-अपना घर समझकर काम करना—यह पशुता है। भागवतमें आया है—‘पशुबुद्धिमिमां जहि’—इस पशु-बुद्धिको छोड़ दो। शरीरको ‘मैं-मेरा’ मानना ही पशु-बुद्धि है। अहंता-ममता करना मानवी बुद्धि नहीं है।

मानवी बुद्धिमें सबके हितमें अपना हित है। उसमें अपना व्यक्तिगत हित नहीं होता। सबका हित ही अपना





किसीके घरमें यदि पैसे कमानेवाला व्यक्ति कह दे कि 'मैं ही कमाता हूँ, मैं अकेला ही खाऊँगा।' तो क्या यह बात न्याययुक्त होगी? स्त्रीको कह दे कि 'तू तो घरपर बैठी रहती है, तुझे क्यों कमाईका हिस्सा दिया जाये? मैंने पारश्रम किया है, मैंने कमाया है।' मैं अकेला

सारा संसार भी मिलकर एक आदमीकी इच्छाकी  
 पूर्ति कर दे—वह सम्भव नहीं है, परन्तु एक आदमी सारे

नारायण!      नारायण!      नारायण!

( श्रीअरविन्दजी मिश्र )

इस फरमानसे शाहजहाँ आहत हुआ। उसने औरंगजेबको धिक्कारते हुए फिर एक पैगाम लिखकर भेजा—  
‘हमारे हिन्दू भाइयोंसे कुछ सीख लो। वे लोग माता-पिताकी सेवाको अपनी खुशकिस्मती मानते हैं। जबतक उनके माता-पिता जीवित रहते हैं, वे उनकी भरपूर सेवा करते हैं। इतना ही नहीं, जब उनके माता-पिताकी मृत्यु हो जाती है तो वे मृतात्माको प्रतिदिन जलतर्पण देकर प्रतीकरूपमें सेवा करते हैं। प्रतिदिन स्मरण करते हैं। इसे हिन्दू भाई बेहद पुण्यका कार्य मानते हैं।’

**मण्डप या माड़व—**विवाहके लिये मण्डप या



राम सीय सिर सेंदुर देहीं । सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥

**भाँवर**—यह विवाहका मुख्य कार्य है। वर-वधू गाँठ बाँधकर ‘सप्तपदी’ के अन्तर्गत सात बार प्रदक्षिणा करते हैं। इस प्रदक्षिणामें वर-वधू अग्निको साक्षी मानकर अपने सम्बन्धोंको स्वीकार करते हैं। ‘मानस’ और ‘गीतावली’ में सीता-रामकी भाँवरकी चर्चा इस प्रकारसे की गयी है—

कनककलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी ॥

(बालकाण्ड १०५।३)

**कोहबर**—कन्याके घरमें जिस स्थानपर कुलदेवता प्रतिष्ठित होते हैं, उसे कोहबर कहते हैं। भाँवरिके बाद वर-वधूको कोहबरमें ले जानेकी परम्परा है। वहाँ देव-पूजनके बाद लोकाचारकी कुछ अन्य प्रथाओंका निर्वाह होता है—

तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै ।

दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै ॥

**लहकौरि**—कोहबरमें पहुँचकर वर और वधूका परस्पर मुँह मीठा कराना या ग्रास लेना लहकौरि कहा जाता है। कोहबरमें स्त्रियाँ वर-वधूको एक-दूसरेको खिलानेका सन्देश देते हुए हास-परिहास करती हैं इस प्रथाका भी मानसमें वर्णन हुआ है—

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।

अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाड़ कै ॥

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।

रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं ॥

(रा०च०मा० १।३२७।छं० २)

**जुआ खेलना**—लहकौरि उपरान्त कोहबरमें वर-वधूको जुआ खेलानेकी प्रथा है। जुआके समय मंगल गारी और हास-परिहास भी खूब किया जाता है। ‘जानकी-मंगल’ और ‘पार्वती-मंगल’ में इस रीतिको गोस्वामीजीने चित्रित किया है। जानकी-मंगल (दोहा १५०)-में वर्णित यह प्रथा द्रष्टव्य है—

जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह।

जीति हारि मिस देहिं गारि दुहु रानिन्ह ॥

नेपालका औसत माथी गरी निवड्ने समयमा बढ्ने लेखन हुन्छी साथ अनर्गलिकामा पनि नभन्ने है

प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण कार्य है। विवाह-सम्बन्धी रीतियोंमें गारी गाना एक विशेष प्रथा है। गोस्वामीजीने गारीके साथ-साथ जेवनार अर्थात् भोजन करनेको सन्तुलित रूपमें प्रस्तुत किया है। ‘पार्वती-मंगल’ ‘जानकी-मंगल’ दोनोंमें ही जेवनार और गारीका सुन्दर चित्रण है। मानसमें शिव-विवाहके अवसरपर जेवनार और गारी-गानका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।

भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं ॥

नारिबृंद सुर जेवँत जानी । लगीं देन गारीं मृदु बानी ॥

(रा०च०मा० १।९९।छं०, ९९।८)

**विदा और दहेज—**कन्याका पिता विवाहोपरान्त बारातको कन्यासहित कन्याके पतिगृहके लिये विदा करता है। कन्याके विदा होनेके अवसरपर उपस्थित सभी लोगोंके कण्ठ अवरुद्ध हो जाते हैं। यह स्थिति माता-पिता और कन्याके लिये बड़ी पीड़ादायक होती है। सीताजीको विदा करते हुए महाराज जनक किस प्रकार विचलित होते हैं, इसका चित्रण गोस्वामीजीने किया है—

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥  
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की॥

(रा०च०मा० १।३३८।५-६)

कन्याके विदाके अवसरपर कन्याको जो उपहार-स्वरूप वस्तुएँ दी जाती हैं, उसे दहेज कहते हैं। गोस्वामीजी पार्वतीजीके विवाहमें दहेजके रूपमें दिये गये वस्त्र-आभूषण, दास-दासियाँ, हाथी, घोड़ा, रथ, बर्तन, गाय, अन्न आदिका चित्रण करते हैं—

दासीं दास तुरग रथ नागा । धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा ॥

अन्न कनकभाजन भरि जाना । दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ॥

(रा०च०मा० १।१०१।७-८)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गोस्वामीजी समन्वयवादी लेखकके साथ-साथ सामाजिक लोकरीतिके संरक्षक कवि भी हैं। गोस्वामीजीका लेखन स्वयंमें अद्वितीय है। उन्होंने भावनाओं, संस्कारोंकी सुन्दर प्रस्तुति अपने साहित्यमें दी है। विवाह-जैसे संस्कारपर उनका



## साधन-सूत्र

मैं किसको पुकारूँ नाथ!

( आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा )

परमार्थके मार्गमें आर्तभावसे पुकारनेका बड़ा महत्त्व है। जब हम दुखी होकर भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं, उनको दीन-हीन होकर पुकारते हैं तो करुणाके सागर भगवान्‌ उस प्रार्थना या पुकारको सुनते हैं। जितनी आकुलतासे हमारी पुकार होती है, उतनी ही व्याकुलतासे परमात्माका उत्तर मिलता है। संतोंने कहा है—

केसव कहि कहि कूकिये, ना कूकिये असार।

रात दिवस के कूकते, कबहुँ तो सुनै पुकार॥

भगवान् सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वसमर्थ हैं और सबके सुहृद् हैं, वे हमारी आर्तपुकारसे कैसे चुप रह सकते हैं ? वे तो जीवमात्रपर दयाका भाव रखते हैं और फिर कोई उनका ही होकर उन्हें पुकारता है तो वे किसी भी रूपमें हमारी सहायता या रक्षा करते हैं।

भगवान्ने गीतामें कहा है—‘उत्तम कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं।’ (गीता ७।१६) आर्त-भावसे पुकारनेका मार्मिक दृष्टान्त द्रौपदीके चौर हरणका प्रसंग है, जब दुष्ट दुःशासन दुर्योधनके आदेशसे एकवस्त्रा द्रौपदीको सभामें घसीटते हुए लाकर बलपूर्वक उसको निर्वस्त्र करने लगा। द्रौपदीने अपनेको सर्वथा असहाय समझकर अपने परम सहायक, परमबन्धु परमात्माको स्मरण किया—‘हे गोविन्द! हे द्वारकावासिन्! हे गोपीजनप्रिय! हे केशव! क्या तुम नहीं जान रहे हो कि कौरव मेरा तिरस्कार कर रहे हैं? हे नाथ! हे लक्ष्मीनाथ! हे ब्रजनाथ! हे दुःखनाशन! हे जनार्दन! कौरव-समुद्रमें डूबती हुई इस द्रौपदीको बचाओ! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! हे विश्वात्मन्! हे गोविन्द! हे विश्वभावन! कौरवोंके हाथमें पड़ी हुई इस दुःखिनीकी रक्षा करो।’ (महाभारत सभापर्व ६७। ४१-४४) द्रौपदीकी पुकार सुनते ही जगदीश्वर भगवान्का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने वस्त्रावतार धारण करके द्रौपदीकी रक्षा की।

ऐसा ही एक और करुण प्रसंग परीक्षितकी माता उत्तराका है। द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने विचार कर लिया था कि मैं पाण्डवोंका वंश नष्ट कर दूँगा। उसने सोते हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको मार डाला। अब केवल उत्तराके गर्भमें एक बालक रह गया। उसको भी नष्ट करनेके लिये अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र चलाया। जब उत्तराने उसको अपनी ओर आते देखा तो भगवान्को पुकारा—‘देवाधिदेव! जगदीश्वर! महायोगिन्! आप मेरी रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये! आपके सिवाय इस लोकमें मुझे अभय देनेवाला दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी आपसमें एक-दूसरेकी मृत्युका कारण बन रहे हैं। प्रभो! सर्वशक्तिमान्! यह दहकता हुआ लोहेका बाण मेरी तरफ दौड़ा आ रहा है। स्वामिन्! यह मुझे भले ही जला डाले, पर मेरे गर्भको नष्ट न करे।’

उत्तराकी पुकार सुनते ही भगवान्ने सुदर्शनचक्र धारण कर लिया और सूक्ष्म-रूप धारण करके गर्भस्थ शिशुके चारों ओर घूमने लगे। इससे ब्रह्मास्त्र गर्भस्थ शिशुका कुछ भी बिगाड़ नहीं सका और शान्त हो गया। भगवद्भक्तोंके ऐसे अनगिनत दृष्टान्त हैं, जहाँ आर्त-भावसे पुकारनेपर भगवान्ने शरणागतकी रक्षा की।

इसमें तीन बातें महत्त्व की हैं—

१. हे नाथ! मैं आपका हूँ!

सर्वप्रथम ! हम इस बातको दृढ़तासे स्वीकार करें कि हे नाथ ! मैं आपका हूँ ! भगवान् ने गीतामें कहा भी है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

(गीता १५।७)

अर्थात् ‘इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।’ हम अपनेको संसारका मानते हैं, इसलिये भगवान्‌से हमारी आत्मीयता नहीं होती है। वस्तुतः हम भगवान्‌के ही हैं—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।

(रा०च०मा० ७।८६।४)

आप बिना दीखै नहीं, तीन लोक में और॥

( आचार्य श्रीरामरंगजी )

समुद्रके अधिष्ठातृदेवके निर्देशानुसार सेतु-निर्माणका कार्य आरम्भ हो गया। सौ योजन सेतुके लिये कपि सुभट दूर-दूरसे पर्वतोंकी शिलाएँ उखाड़-उखाड़कर लाने लगे। विश्वकर्मा-अंशोत्पन्न वानरवीर नल सेनापति नीलके साथ अन्यान्य वानर-वीरोंके संकल्पित सहयोगसे निर्माण-कार्यमें संलग्न हो गये। विश्वके नेत्रोंको चकित कर देनेवाला एक अकल्पित स्वप्न मात्र आठ दिवसोंमें धरतीपर साकार अवतरित हो गया। होता भी क्यों नहीं, जब प्रकाशके लिये केवल भगवान् भुवनभास्कर सूर्यदेवके रश्मि-समूहोंपर आश्रित न होकर, वीरवर लक्ष्मणके अग्निबाणोंने दीप्त दीप-दण्डिकाओंके रूपमें पंक्तियोंकी पंक्तियाँ लगाकर घोर तमिस्राको अनन्त पूर्णिमाओंकी प्रदीप्तसे विभूषित विभावरी जो बना दिया था। दूर खड़े निशाचर-समूह असहायावस्थामें निर्माण-कार्यको ताकते तो रहे, किंतु प्राणोंकी बाजी लगाकर भी उन लक्ष्मण-रेखाओंको लाँघनेका साहस तो न जुटा पाये। अतः कार्य निर्विघ्नरूपेण सम्पादित हो गया। सेतुका निरीक्षणकर राघवेन्द्रने महर्षि अगस्त्यसे परामर्शकर वहाँ भगवान् शंकरके श्रीविग्रहकी स्थापनाका निश्चय व्यक्त किया। अंजनीनन्दन हनुमान् कैलाससे भगवान् पशुपतिका दिव्य विग्रह लेने चल पड़े। निश्चित मुहूर्त व्यतीत होता देखकर राघवेन्द्रने समुद्र-तटकी बालुकाको एकत्रितकर, उन्हें प्राण-प्रतिष्ठित कर दिया।

वैदिक विधि-विधानसे संस्थापना, पूजन-अर्चनके उपरान्त श्रीराम बोले कि 'यह मुझ दाशरथि रामके परमाराध्य भगवान् शंकरका ज्योतिर्लिंग, भविष्यमें रामके ईश्वर 'श्रीरामेश्वरम्' के नामसे प्रसिद्ध होगा।' तभी आकाशमण्डलमें एक मधुर स्वर गूँजने लगा, 'यह लिंग-विग्रह उस शंकरका है, जिसके ध्येय नीलाम्बुज-श्यामल सुस्मित स्वयं श्रीराम हैं। अतः 'शिवके ईश्वर'

श्रीरामद्वारा प्रस्थापित इस लिंग-विग्रहकी संज्ञा श्रीरामेश्वरम् ही होगी।'

इस अवसरपर समुपस्थित अनेकानेक ऋषि-मुनियोंसहित समस्त जन असमंजसमें पड़ गये। वे कहने लगे कि इन्हें श्रीरामेश्वरम् तो निर्विवादरूपेण कहेंगे, किंतु किसकी व्याख्याके अनुसार, किनकी परिभाषाके आधारपर? इस मृदुल-मंजुल ऊहापोहका समापन करनेवाली महर्षि अगस्त्यकी मनोहर वाणी गूँज उठी कि 'जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम एवं गंगाधर शशांकमौलि भगवान् शंकरका मंगलमय समागम हो रहा है, वे श्रीमद्रामेश्वरम्की उपाधिसे विभूषित होकर, इसी नामसे कल्प-कल्पमें सम्पूजित रहेंगे। यह महाकालका पावन तीर्थ, तीर्थस्थानोंकी प्रथम पंक्तिमें सदैव सर्वमान्य रहेगा। उत्तराखण्डप्रसूता भगवती गंगाके जलसे प्रहर्षित होनेवाले ये देवभूमि भारतवर्षकी सांस्कृतिक एकता-अखण्डताका उद्घोष करते हुए आशुतोष युग-युगमें जन-जनका कल्याण करेंगे। लौकिक-पारलौकिक ऐश्वर्य-वैभव प्रदान करेंगे। इसके अतिरिक्त कपिवर नलके नेतृत्वमें निर्मित इस सेतुके स्वामी भी ये ही त्रिलोचन पार्वतीश्वर हैं। अतः वे सेतुपति श्रीमद्रामेश्वरम् कहलायेंगे।'।

‘नहीं-नहीं, ‘सेतुपति’ शब्द भुजंगभूषणको अहंकारकी दलदलमें दल डालेगा। अतः मैं इस सेतुसे अवश्यमेव संयुक्त रहूँगा, किंतु पति या स्वामी बनकर नहीं, बन्धु बनकर। अतः मुझे ‘सेतुबन्धु श्रीमद्रामेश्वरम्’ ही कहा जाय।’

किसमें साहस था कि वह महादेवके इन आदेशात्मक शब्दोंका विरोध क्या उसपर टीका-टिप्पणी भी करता।

‘सेतुबन्धु श्रीमद्रामेश्वरम्की जय जय जय’ से दशों दिशाएँ गुँज उठीं।

## धर्मानुष्ठानोंमें श्राद्ध, पिण्डदान और गया

( डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि', एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट० )

इस भू-लोकपर जो आता है, वह अवश्य ही एक निश्चित अवधिके बाद धरतीसे चला जाता है। जीवके आनेकी प्रक्रिया 'जन्म' और जानेकी विधिको 'मृत्यु' कहा जाता है। मृत्युके बाद और जन्मसे पहले मानव (जीव)—मात्रका तरण-तारण जिन तीन कृत्योंसे होता है—वे हैं तर्पण, श्राद्ध और पिण्डदान। ऐसे तो सम्पूर्ण भारतीय भू-भागमें कितने ही तीर्थ-स्थानोंपर, नदी-किनारे, सरोवरोंके तटपर, वृक्षके नीचे, अरण्यादि क्षेत्रमें, पर्वतादि क्षेत्र एवं नदी-संगममें श्राद्ध-पिण्डदानके विधान हैं, पर पुराणोंमें वर्णित तथ्योंके आलोकमें यह कहना एकदम सहज जान पड़ता है कि श्राद्ध-पिण्डदानके निमित्त सर्वाधिक उत्तमोत्तम स्थान अगर कोई है तो वह है—गया। श्रद्धा एवं विश्वासका यह सूत्र आदिकालसे इस धरतीपर पल्लवित है, तभी तो गया को 'गयाजी' कहा जाता है।

अट्टारह पुराणोंमें आधे-से-अधिकमें श्राद्ध, पिण्डदान एवं गया-माहात्म्यकी चर्चा है। बिहार राज्यमें स्थित गया राजधानी पटनासे तकरीबन एक सौ किलोमीटर दूरीपर पितृतोया फल्गुके किनारे युगों-युगोंसे विराजमान है। गरुडपुराणकी पंक्ति है कि पृथ्वीके सभी तीर्थोंमें गया सर्वोत्तम है—'पृथिव्यां सर्वतीर्थेभ्यो यथा श्रेष्ठा गयापुरी।' तो वायुपुराण स्वीकार करता है कि गयामें ऐसा कोई स्थान नहीं, जो तीर्थ न हो—

गयायां न हि तत् स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।

सान्निध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम्॥

गयामें पिण्डदानके लिये कोई भी काल निषिद्ध नहीं है—'गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद् विचक्षणः।' बुद्धिमान्को सभी समय एवं हरेक कालमें यहाँ पिण्डदानका विधान है और—तो-और अधिकमासमें, जन्मदिनमें, गुरु-शुक्र अस्त होनेमें, सिंह राशिके बृहस्पतिमें भी गयामें पिण्ड निषेध नहीं है—

अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयोः॥

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ।

(वायुपुराण १०५।१८-१९)

गयामें पिण्डदान करनेके लिये छः मासका विशेष माहात्म्य है—मीन, मेष, कन्या, धनु, कुम्भ और मकर—इन राशियोंपर जब सूर्य हों, उस समय तीनों लोकोंके लोगोंके लिये गयामें पिण्डदान करना दुर्लभ है—

मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे।

गयायां दुर्लभं लोके वदन्ति ऋषयः सदा॥

मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम्॥

(वायुपुराण १०५।४७-४८)

गयातीर्थकी कथा परम वीर्यवान् वैष्णव असुर 'गय' से सम्बद्ध है, जिसकी मुक्ति यज्ञोपरान्त श्रीविष्णुके



गदाधररूपसे स्थित होनेसे हुई, जो एक सौ योजन लम्बा और साठ योजन चौड़ा था। यज्ञ और तपसे 'गय' का शरीर परम पवित्र हो गया, जहाँ कोटि-कोटि तीर्थ एवं देवताओंका स्थान है और तभीसे भगवान् गदाधरके रूपमें यहाँपर स्थित होकर भक्तोंके समस्त मनोरथोंका

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

पूर्ण कर रहे हैं। गयामें श्राद्ध करनेसे ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन और उक्त संसर्गजनित सभी महापातक नष्ट हो जाते हैं—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।

पापं तत्संगजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥

(वायुपुराण ४३।१२)

गयातीर्थका कुल परिमाण पाँच कोश है और गयाशिर एक कोशका है। यहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको शाश्वत तृप्ति हो जाती है—

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ।

यत्र पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती ॥

गया आनेमात्रसे ही व्यक्ति पितृ-ऋणसे विमुक्त हो जाता है—

गयागमनमात्रेण पितृणामनृणो भवेत् ।

गयाजीमें जहाँ-जहाँ पितरोंकी स्मृतिमें पिण्डार्पित किया जाता है, उसे 'पिण्डवेदी' कहा गया है। विवरण है कि पहले गया-श्राद्धमें कुल पिण्डवेदियोंकी संख्या ३६५ थी, पर वर्तमानमें इनकी संख्या पचासके आसपास ही शेष है और इनमें श्रीविष्णुपद, फल्गु नदी और अक्षयवटका विशेष मान है। गयाधामकी अन्य पिण्डवेदियोंमें आदिगया, प्रेतशिला, रामशिला, वैतरणी, उत्तरमानस, दक्षिणमानस, ब्रह्मकुण्ड, ब्रह्मयोनि, सीताकुण्ड, रामकुण्ड, सोलहवेदी, मुण्डपृष्ठ, गायत्रीघाट, दधिकुल्या, मधुकुल्या, काकबलि, धौतपद आदिका नाम आता है।

मानव जीवनपर्यन्त जिन तीन ऋणोंसे आबद्ध रहता है, उसमें पितृ-ऋणसे उऋण होनेका एकमेव साधन गयाश्राद्ध है तभी तो 'मत्स्यपुराण' में गयाको 'पितृतीर्थ' की संज्ञासे विभूषित किया गया है। गयामें श्राद्ध-पिण्डदानकी परम्परा युगयुगीन है, जहाँ देववृन्द, ऋषि-मुनि एवं साधु-सन्तोंसे लेकर राजाओं-महाराजाओं एवं आमजनोंने श्राद्ध-पिण्डदानकर एक आदर्श कायम किया है।

हिन्दू-धर्मग्रन्थोंके अनुसार प्रत्येक गृहस्थ हिन्दूको पाँच यज्ञोंको अवश्य करना चाहिये। जिसे 'पंच-महायज्ञ' भी कहा गया है। ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), पितृयज्ञ (पिण्डक्रिया), देवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ (बलिवैश्व-

देव) और मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार)—इनमें पितृयज्ञका सर्वोत्तम स्थल गया है। ऐसे तो गयामें सालोंभर श्राद्ध, पिण्डदान—जैसा धर्मानुष्ठान होता रहता है, पर वर्षका एक पक्ष जिसे पितृपक्ष कहा जाता है, जो आश्विन माहका कृष्णपक्ष है; इसमें यहाँ इस कार्यके वास्ते दूर-देशके लोगोंका आगमन होता है। आज भी भक्तगण कहीं भी श्राद्ध करते हैं तो उनका यही संकल्प होता है—‘गयायां दत्तमक्षय्यमस्तु!’ अर्थात् इसे गयामें दिया गया समझिये। कई अर्थोंमें गयाको मध्यका धाम कहा गया है, जो चारों दिशाओंके चार धामके मध्य भागमें शोभायमान है।

पुत्रकी पुत्रता तीन प्रकारसे ही सिद्ध होती है, इस सन्दर्भमें शास्त्रीय कथन है—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात् ।

गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥

(श्रीमद्देवीभागवत ६।४।१५)

अर्थात् जीते-जी पिताके वचनका पालन करना, मृत्यु हो जानेपर उनके श्राद्धमें प्रचुर भोजन कराना और गयामें पिण्डदान करना—इन तीनों कार्योसे ही पुत्रका पुत्रत्व सिद्ध होता है। सचमुच शाश्वत मुक्तिका मार्ग गयाश्राद्धके उपरान्त ही प्रशस्त होता है। बगैर गया-श्राद्धके प्राणी मोक्षाधिकारी हो ही नहीं सकता, तभी तो आमजनोंके मध्य गया स्वर्ग जानेकी आरक्षण-स्थलीके रूपमें प्रसिद्ध है। गरुडपुराणकी पंक्ति है कि पितृपक्षके दिनोंमें समस्त ज्ञात-अज्ञात पितर अपने-अपने परिजनों खासकर पुत्र-पुत्रादिकोंसे अन्न-जलकी आशामें फल्युके तटपर आ विराजते हैं और अपने लोगोंको परम आशीर्वाद प्रदान करते हैं। इसके विपरीत जो श्राद्ध-तर्पण नहीं करते, उन्हें शाप देकर पितरलोक चले जाते हैं।

अस्तु! स्पष्ट हो जाता है कि इहलोकमें श्राद्ध-पिण्डदानका सर्वोत्कृष्ट स्थल गयाजी है। पितरोंको अक्षय तृप्तिकी संप्राप्ति गयामें ही होती है। यही कारण है कि हरेक वर्ष पितृपक्षमें यहाँ आकर लाखों लोग पितृ-ऋणसे उऋण हो, जीवन-पथ प्रकाशित बनाते हैं।



## सच्चा जीवन-दर्शन

( श्रीराजेशजी माहेश्वरी )

मैं और मेरा मित्र सतीश, हम दोनों आपसमें चर्चा कर रहे थे। हमारी चर्चाका विषय था—हमारा जीवन-क्रम कैसा हो? हम दोनों इस बातपर एकमत थे कि मानव प्रभुकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और हमें अपने तन और मनको तपोवनका रूप देकर जनहितमें समर्पित करनेहेतु तत्पर रहना चाहिये। हमें औरोंकी पीड़ाको कम करनेका भरसक प्रयास करना चाहिये। हमें माता-पिता और गुरुओंका आशीर्वाद लेकर जीवनकी राहमें आगे बढ़ना चाहिये। मनसा वाचा कर्मणा सत्यमेव जयते और सत्यं शिवं सुन्दरम् आदिका जीवनमें समन्वय हो, तभी हमारा जीवन सार्थक होगा और हम समृद्धि, सुख एवं वैभव प्राप्त करके धर्मपूर्वक कर्म कर सकेंगे।

एक दिन सतीश सुबह-सुबह ही सूर्योदयके पूर्व मेरे निवासपर आ गया और बोला—चलो, नर्मदामैयाके दर्शन करके आते हैं। मैं सहमति देते हुए उसके साथ चल दिया, लगभग आधे घण्टेमें हमलोग नर्मदातटपर पहुँच गये। हमने रवाना होनेके पहले ही अपने पण्डाजीको सूचना दे दी थी कि हम कुछ ही देरमें उनके पास पहुँच रहे हैं। वे वहाँपर हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

‘चरण-स्पर्श पण्डितजी!’

‘सदा सुखी रहें जजमान! आज अचानक यहाँ कैसे आना हो गया?’

‘कुछ नहीं। ऐसे ही नर्मदाजीके दर्शन करने आ गये। सोचा आपसे भी मुलाकात हो जायगी। पण्डितजी आज आप हमें किसी ऐसे स्थानपर ले चलिये, जहाँ बिलकुल हल्ला-गुल्ला न हो। केवल शान्ति और एकान्त हो। सिर्फ हम हों और नर्मदामैया हों।’

‘पूजा-पाठ और स्नान-ध्यानका सामान साथमें रख लें?’

‘नहीं, हमलोग सिर्फ नर्मदामैयाके दर्शन करनेका संकल्प लेकर आये हैं।’

उत्तर सुनकर पण्डितजी हमें लेकर आगे-आगे चल दिये। वे हमें एक ऐसे घाटपर ले गये, जहाँ पूर्ण एकान्त था और हम तीनोंके अलावा वहाँ कोई नहीं था।

नर्मदाका विहंगम दृश्य हमारे सामने था। सूर्योदय होने ही वाला था। आकाशमें लालिमा छायी हुई थी। पक्षी अपने घोंसलोंको छोड़कर आकाशमें उड़ानें भर रहे थे। क्षितिजसे भगवान् भुवनभास्कर झाँकने लगे थे। उनका दिव्य आलोक दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। हम अपने अन्दर एक अलौकिक आनन्द एवं ऊर्जाका संचार अनुभव कर रहे थे। हमें जीवनमें एक नये दिनके प्रारम्भकी अनुभूति हो रही थी।

हमारी दृष्टि दाहिनी ओर गयी, वहाँके दृश्यको देखकर हम रोमांचित हो गये। हम जहाँ खड़े थे, वह एक श्मशान था। पिछले दिनों वहाँ कोई शवदाह हुआ था। चिताकी आग ठण्डी पड़ चुकी थी। राखके साथ ही मरनेवालेकी जली हुई अस्थियाँ अपनी सद्गतिकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

सतीश भी इस दृश्यको देख चुका था। वह आकाशकी ओर देखकर कह रहा था—प्रभु! मृतात्माको शान्ति प्रदान करना।

मेरे मनमें कल्पनाओंकी लहरें उठ रही थीं। मन कह रहा था—अथक प्रयासके बावजूद भी उसके घरवाले एवं रिश्तेदार विवश और लाचार हो गये होंगे और उस व्यक्तिकी साँसें समाप्त हो गयी होंगी। साँसोंके चुकनेके बाद तो औपचारिकताएँ ही रह जाती हैं। जो यहाँ आकर पूरी होती हैं।

हम अपने विचारोंमें खोये हुए थे कि वहाँ कुछ दूरपर हमें एक संत शान्त मुद्रामें बैठे दिखलायी दिये। हम न जाने किस आकर्षणमें उनकी ओर खिँचे चले गये। उनके पास पहुँचकर हमने उनका अभिवादन किया और उनके सम्मुख बैठ गये। उन्हें हमारे आनेका

आओ, अब हम वापस चलें।

योगेश्वर कृष्ण दीनबंधू कहायौ है ॥

## शास्त्रीय दिनचर्याका अनुकरण ही श्रेयस्कर

( डॉ० श्रीकमलाकान्तजी तिवारी )

मनुष्ययोनि कर्मयोनि है। कर्म करना उसका स्वभाव है। अतः वह बिना कर्म किये रह ही नहीं सकता। सुव्यवस्थित शुभकर्म नहीं करेगा तो अव्यवस्थित अशुभकर्म करेगा, आलस्य और प्रमादयुक्त निकम्मे कर्म करेगा और उसका अगला जन्म उसके कृत कर्मोंका फल होगा। चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमणका जिम्मेदार यह मानव शरीर ही है।

एक नक्षत्र एवं एक ही क्षणमें विभिन्न परिस्थितियों एवं विभिन्न योनियोंमें जीवोंका जन्म उसके द्वारा मानव देहमें किये गये कर्मोंका ही परिणाम है। राजाके घरमें जन्म एवं भिखारीके घरमें जन्म तथा अन्य शूकर-कूकरादि योनियोंमें जन्म, ठीक एक ही समयपर पूर्वकृत कर्मोंका ही परिणाम है। इस घटनाका कारण मात्र मानव देहमें किये कर्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। 'स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः' यह जगत् कर्मोंका ही फल है। अब यह प्रश्न है कि कर्म क्या है? इस विषयमें श्रीमद्भागवतका वचन है—'कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादन लौकिकः' कर्म, अकर्म एवं त्याज्यकर्म क्या हैं, यह वेद-शास्त्र बताते हैं, लोक इसका निर्णय करनेमें समर्थ नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीतामें स्पष्ट निर्देश है—'ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥' (शास्त्र-विधिको जानकर ही कर्म करना चाहिये, शास्त्रानुसार कर्म करनेका निर्देश है) अभीतक हमने अपने जीवनका अधिकांश सम्भवतः शास्त्रविहित कर्मोंके विरुद्ध आचरणमें ही बिताया है। बीते जीवनके कर्मानुसार पुनः यह मानव देह प्राप्त होगी, ऐसा सम्भव नहीं लगता। परिणामतः पुनः तिरासी लक्ष निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे योनियोंमें भ्रमण करनेकी त्रासदी हमारे समक्ष है। इस मानव शरीरकी आयुका अधिकांश समय जाने-अनजाने बीत चुका है। बुद्धिमानी इसीमें है कि जीवनका शेष समय सावधानीके साथ बिताया जाय।

गायत्री, तर्पण, शालग्राम (देव)–पूजन, गोग्रास, भगवान्का भोग दैनिक आचारसे बाहर हो गया है। ‘अर्तर्पिताः पितरः रुधिरं पिबन्ति’ तर्पण, गयाश्राद्ध—बदरीश्राद्ध—विहीन घरोंमें पितरोंकी प्रेतबाधाके चलते हम सम्पन्नताके बावजूद दुखी जीवन जीनेको बाध्य हैं; क्योंकि हमने तपःपूत जीवन जीनेके स्थानपर अपनेको भोगोंका दास बना लिया है। स्वयं भगवान् कहते हैं—

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः ।

बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दश्चरं तपः ॥

(श्रीमद्भा० २।९।२३)

अर्थात् मैं तपस्यासे ही इस संसारकी सृष्टि करता हूँ, तपस्यासे ही इसे धारण-पोषण करता हूँ और तपस्यासे ही इसे अपनेमें लीन कर लेता हूँ। तपस्या मेरी एक दुर्लभ शक्ति है।

सोचिये, स्वयं भगवान् भी तपस्याका महत्त्व स्वयं अपने लिये बताते हैं। इसी प्रकार यज्ञका महत्त्व बताते हुए श्री भगवान् कहते हैं—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

(गीता ३।१०-११)

अर्थात् प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंको रचकर उनसे कहा कि तुमलोग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो। तुमलोग इस यज्ञके द्वारा देवताओंको उन्नत करो और वे देवता तुमलोगोंको उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थभावसे एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे।

सृष्टिके आदिमें ही भगवान् ने हम मनुष्योंको

सकुशल जीवन बिताने के लिये देवताओं (भगवान्)-का

क्या करना चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये?  
इसमें शास्त्र ही प्रमाण हैं, इसलिये शास्त्रविधिको

[ प्रेषक—पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री ]

[रसिक संत श्रीसरसमाधरीजी]





( श्रीरामेश्वरजी टांटिया )

बात शायद ५०-५५ वर्ष पहलेकी है। उस समय राजस्थानके प्रायः प्रत्येक गाँवमें किसी बट या पीपलके वृक्षपर या किसी सूने कुएँकी सारण (ढलान)–में भूत-प्रेत या जिन्नका निवास माना जाता था। गाँवमें बहुत-से ऐसे व्यक्ति मिल जाते थे, जो कसम खाकर कहते कि अपनी आँखोंसे एक रात अमुक स्थानपर सफेद कपड़े पहने बड़े-बड़े पैरोंवाले, वृक्षकी-सी ऊँचाईके एक भूतको देखा था।

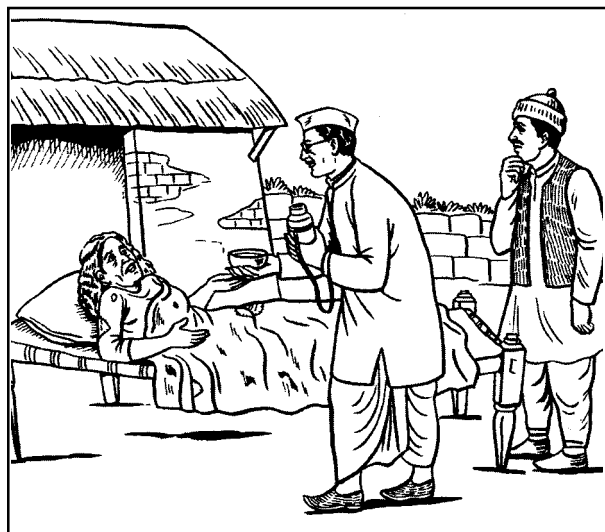
भूत-भूतनीके सिवाय कस्बे या गाँव में एक-दो डाकी या डाकिन भी होते थे। मुझे अपने गाँवकी एक घटना अब भी अच्छी तरह याद है। हरखूकी माँ वहाँ डाकिनके रूपमें प्रसिद्ध थी। उस समय वह प्रौढ़ावस्थामें थी। स्वास्थ्य भी साधारणतया ठीक था, परंतु लोग उससे डरते थे, इसलिए किसी घरमें उसे काम-काज मिलता नहीं था। कमानेवाला कोई था नहीं, भीख माँगकर किसी तरह अपना निर्वाह करती थी। जब मोहल्लेमें आती तो सारे घरोंमें पहलेसे ही उसके आनेकी खबर फैल जाती। स्त्रियाँ बच्चोंको छिपा लेतीं और घरके दरवाजेपर-से ही जल्दीसे अनाज या रोटी देकर उसे वापस कर देतीं। हम बच्चे सहमे हुएसे उसे जाते हुए पीछेसे देखनेका प्रयत्न करते।

उन दिनों गाँवोंमें डाक्टर-वैद्य तो थे नहीं। बच्चोंको ‘डब्बा’ या अन्य किसी प्रकारकी बीमारी होनेपर हरखूकी माँपर सन्देह जाता था। दो-तीन सयाने व्यक्ति जाकर उसका थूक लाकर बच्चोंपर छिड़कते थे। उनमेंसे बहुत-से तो अपने-आप ठीक हो जाते, मगर कुछ मर जाते। मरनेवालोंकी जिम्मेदारी हरखूकी माँ समझी जाती। हरखूकी माँने भी अपमानित जीवनसे एक प्रकारका समझौता-सा कर लिया था; क्योंकि जीवन-यापन करनेके लिये किसी-न-किसी प्रकारसे अन्न-वस्त्रकी व्यवस्था करना तो जरूरी था ही।

कई वर्षोंके बाद अपने गाँव गया था। दूसरी बातोंके साथ-साथ हरखूकी माँकी भी चर्चा आयी तो पता लगा कि वह बहुत दिनोंसे बीमार है, इसलिये भिक्षाके लिये नहीं आ पाती। उसे नजदीकसे जाननेकी जिज्ञासा तो बहुत वर्षोंसे थी ही और अब मेरे लिये उसका कोई भय नहीं रह गया था, इसलिये लोगोंके मना करनेपर भी एक मित्रके साथ उसके घर मिलनेके लिये गया।

वह गाँवसे बाहर एक झोंपड़ीमें रहती थी। वहाँ जाकर देखा कि एक टूटी-सी खाटपर वह लेटी हुई थी। दो-चार मिट्टीके और अल्युमिनियमके बरतन इधर-उधर बिखरे हुए पड़े थे। कई दिनोंसे शायद सफ़ाई नहीं की गयी थी, इसलिये कूड़ा-करकट भी फैला पड़ा था।

दो-तीन बार आवाज़ देनेपर वह उठी और फटी-फटी आँखोंसे हमें देखने लगी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई उसे भी पूछनेके लिये आ सकता है। दुखी मनुष्यको जब सान्त्वना मिलती है तो वह द्रवित हो जाता है। हमें देखकर वह रोने लगी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु हिचकियाँ बँध गयीं; अतः कह



कुछ वर्षों बाद हमें एक बच्चा हुआ, प्यारका नाम रखा गया हरखू! एक बार गाँवमें हैजा फैला। मेरा पति भी इससे अछूता न बचा। गाँवका एकमात्र वैद्य दूसरे बड़े लोगोंकी चिकित्सामें लगा हुआ था। बहुत आरज-

घटना इस प्रकार बतायी गयी कि एक दिन गाँवके एक प्रतिष्ठित सेठका बच्चा बीमार हो गया। संयोगसे

थोड़े दिनों बाद सेठजीके यहाँ बच्चेके स्वास्थ्य-  
लाभकी खुशीमें हनुमान्जीके प्रसादका भोज हुआ।  
गाँवके पचासों व्यक्ति दाल-चूरमा खाते हुए हरखूकी  
माँकी मौतके बारेमें इस प्रकारसे बातें कर रहे थे, जैसे  
वह एक साधारण-सी घटना थी। मैं भी निमंत्रणमें तो  
गया था, परंतु किसी प्रकार भी भोजमें सम्मिलित न हो  
सका। मुझे वहाँकी हवामें उस वृद्धाके अन्त समय की  
चीख-पुकार सुनायी पड़ रही थी।

[ प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया ]

—श्रीशरदचन्द्रजी पेंढारकर

## ऊर्जाका अक्षय स्रोत—गोबर गैस

(सर्वोदय विचार परिषद्)

विज्ञानकी प्रगति और नित नये आविष्कारोंके साथ जमाना बदलता जा रहा है। किसी जमानेमें ट्रंककाल बुक करके बात की जाती थी, भारी-भारी घुमानेवाले फोन थे। अब हलके-हलके मोबाइल आ गये हैं, इण्टरनेटके जरिये चेहरा देखकर बात कर सकते हैं। किसी जमानेमें भारी-भारी कैमरे थे, फिर आये रीलवाले कैमरे। अब डिजिटल कैमरा आ गया तो पुराने कैमरे अलमारीमें बन्द पड़े रहते हैं। किसी जमानेमें सभी रेलगाड़ियाँ कोयलेके इंजनसे चलती थीं, उसकी जगह ली डीजल इंजनने एवं डीजल इंजन भी अब शंटिंगके काम आता है—बिजलीका इंजन ही ज्यादातर रेलगाड़ियाँ चलाता है, किंतु बिजलीका इंजन भी आगामी कुछ सालोंमें म्यूजियममें देखनेको मिलेगा। उसका स्थान लेने वाला है गोबर गैससे चलनेवाला इंजन। स्वीडनमें गोबर गैससे चलनेवाला इंजन ३०० किलोमीटरकी स्पीडसे रेलगाड़ीको चलाता है, बैंकाकमें प्राकृतिक गैससे टैम्पू चलते हैं, दिल्ली आदि कुछ शहरोंमें बसें एवं टैम्पू कम्प्रेस्ड नेचुरल गैस (CNG) से चल रहे हैं। कानपुर एवं जयपुर गोशालाकी मारुति कार/वैन भी गोबर गैससे चल रही है।

आज अमेरिका—जैसे समृद्ध देशके राष्ट्रपतिको भी मानना पड़ रहा है कि डीजल, पेट्रोल, कोयला आदि सब खत्म होनेवाला है, ऊर्जाके अक्षय स्रोतकी खोज होनी है और गायका गोबर इसका एक सशक्त विकल्प हो सकता है। कैलिफोर्निया, आस्ट्रेलिया आदि अनेक स्थानोंमें गोबरसे बिजली बन भी रही है। महान् वैज्ञानिक एवं दिल्ली विश्वविद्यालयके अवकाशप्राप्त

प्रोफेसर मदन मोहन बजाजका मानना है कि बहुत शीघ्र ही वह जमाना आयेगा, जब सारे हवाई जहाज भी इसी गोबर गैससे चलेंगे। भविष्यमें अधिकांश परिवहन एवं बिजली-उत्पादन गोबर गैससे होनेवाला है—ऐसा डॉ० बजाजका मानना है। इस गैसके प्रयोगसे सबसे कम प्रदूषण होता है। इसीलिये इसे 'ग्रीन फियुल' अर्थात् 'हरा ईंधन' भी कहते हैं। कहावत है—'गाय घास-फूस खाकर अमृत-जैसा दूध देती है, जो मनुष्यके शिशुकालसे जीवनका प्रमुख आधार है, किंतु अब कहावत बदलनेवाली है कि 'गाय घास-फूस खाकर गोबर-जैसा अनमोल खजाना देती है—जिससे सारी दुनिया चलती है और सारी दुनिया रोशन होती है।' इस प्रकार गायके आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, औषधीय एवं कृषि-सम्बन्धी महत्त्वसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो जायगा उसका आर्थिक पक्ष।

दुर्भाग्यकी बात है कि स्वतन्त्रताके बादके गत ६०-६२ सालोंमें हमलोगोंने ९० प्रतिशत गोवंशका नाश कर दिया है। गोवंशका नाश सोनेका अण्डा देनेवाली मुर्गीकी हत्याके समान मूर्खतापूर्ण कदम है, जो भारत सरकार नये-नये कत्लखाने खोलकर एवं मांस-निर्यातको बढ़ावा देकर उठा रही है, उससे गोवंशकी अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं और अनेक विलुप्तिके कगारपर हैं। जैसे शेर-हिरणके संरक्षणपर सरकार करोड़ों रुपये खर्च करती है, वैसे ही गोवंशके संरक्षणपर भी उसे खर्च करना चाहिये; क्योंकि गाय सबसे उपयोगी है। यह हमारे अस्तित्वके लिये आवश्यक है और भविष्यकी ऊर्जाका अक्षय स्रोत है।

## गोबरमें भगवती लक्ष्मीका निवास

लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला । गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन ॥

(स्कन्द० अ० रे० ८३।१०८)

गोबरमें परमपवित्र सर्वमंगलमयी श्रीलक्ष्मीजी नित्य निवास करती हैं। इसलिये गोबरसे लेपन करना चाहिये।

## संत उद्बोधन

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

साधक महानुभाव ! सावधानीमें सर्वतोमुखी विकास तथा जीवन है, इस महामन्त्रको अपनाना प्रत्येक सजग मानवके लिये अनिवार्य है। किसी भी व्रतको पूरा करनेके लिये तप, प्रायश्चित्त तथा प्रार्थना अनिवार्य है। आप महानुभाव बड़े ही भाग्यशाली हैं, जिन्होंने आजीवन मानवकी हितकारी सेवा स्वीकार की है। सेवापरायण मानवका जीवन ही प्राकृतिक तथा दैवी विधानके अनुरूप हो जाता है; कारण कि विधान और जीवनमें एकता है। वह विधान नहीं है, जिसके अपना लेनेपर अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप जीवनकी प्राप्ति न हो। स्वाधीनता प्राप्त करनेकी स्वाधीनता मानवको जन्मजात प्राप्त है। मानव अपनी ही भूलसे पराधीन होकर सभीके लिये अनुपयोगी हो गया है। शान्तिपूर्वक अपनी ओर देखनेसे अपनी भूलका अनुभव हो सकता है और भूलरहित न होनेकी वेदना मानवको सदाके लिये भूलरहित कर देती है, यह वैधानिक तथ्य है। वर्तमानकी वेदना ही भविष्यकी उपलब्धि होती है। लक्ष्यसे निराश न होनेपर स्वतः वेदनाकी उत्पत्ति होती है। वेदना वह तत्त्व है, जो व्यथितको सदाके लिये व्यथारहित कर देती है। आप सजग मानव हैं। आपको अपने व्रतको पूरा करनेके लिये बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयोंको सहर्ष सहन करना चाहिये। वह तभी सम्भव होगा, जब आप मानव-जीवनके महत्त्वको अपनायेंगे। मानव-जीवनमें निराश होने तथा हार स्वीकार करनेके लिये कोई स्थान ही नहीं है। की हुई भूल न दोहराना ही वास्तविक प्रायश्चित्त है और लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये नित-नव उत्साह तथा परम व्याकुलता ही प्रार्थना है। केवल माँगको जगाना है वह अपनी पतिमें आप समर्थ है।

अपनी सेवा और मानवकी सेवा एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। ज्यों-ज्यों मानव अपनेको अपने लिये उपयोगी बनाता जाता है, त्यों-त्यों वह मानवमात्रके लिये उपयोगी होता जाव है; क्योंकि अपने लिये

उपयोगी हुए बिना कोई मानव-सेवा कर ही नहीं सकता और न वह जगत् तथा जगत्पतिके काम आ सकता है। सर्वोत्कृष्ट सेवा यही है कि अचाह होकर प्राप्त बलका सदुपयोग किया जाय। मानव-जीवनमें बलके दुरुपयोगके लिये कोई स्थान ही नहीं है। पदलोलुपता, अधिकार-लालसाकी जीवनमें गन्ध भी न रह जाय, जीवन उदारता तथा प्रेमसे भरपूर हो जाय; यह माँग सतत अपने समक्ष रखनी है।

आजीवन कार्यकर्ताको त्यागको अपनाकर उसकी फलासक्तिसे और प्रेमको अपनाकर प्रेमी होनेके भाससे रहित हो जाना है।

यह तभी सम्भव होगा, जब यह अनुभव किया जाय कि बल अपने लिये नहीं है, अपितु 'पर' के लिये है। ज्ञान अपने लिये है और प्रेम प्रभुके लिये है। इस सत्यसे जीवनको अभिन्न करना है। भूतकालकी भूलसे भयभीत होकर निराश न हो जायँ, अपितु वर्तमान निर्दोषताके आधारपर अभय हो जायँ। जो भयरहित हो जाता है, उससे किसीको भय नहीं होता। वह सभीका अपना हो जाता है और सभी उसके अपने हो जाते हैं। अर्थात् मानव-सेवा करनेवालेका विश्व और विश्वनाथसे अविभाज्य सम्बन्ध है। सेवा, त्याग, प्रेम उसका सहज स्वभाव है जो सभीको अधीष्ट है।

यह भलीभाँति अनुभव करो कि अल्प सामर्थ्यसे विकासमें कोई बाधा नहीं होती, अपितु पवित्र भावसे प्राप्त सामर्थ्यके सदुपयोगसे सभीका सर्वतोमुखी विकास होता है। यह कैसा अनुपम अलौकिक विधान है! अब आप महानुभावोंको यह मान ही लेना चाहिये कि अपने लिये उपयोगी होकर सभीके लिये उपयोगी होनेका दायित्व पूरा करना है। जो अपनी आप सहायता करता है, उसके लिये जगत् और जगत्पति दोनों ही अनुकूल हो जाते हैं। इस वास्तविकतामें आस्था करो और

लिये उपयोगी होता जाता है; क्योंकि अपने लिये लक्ष्यपर दृढ़ रहे—सफलता अवश्यम्भावी है।

## साधनोपयोगी पत्र

(१)

### रागात्मिका और रागानुगा भक्तिका भेद

सम्मान्य महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि भक्ति सर्वश्रेष्ठ है—यह जब निश्चय और अनुभव हो जाता है, तब किसी 'रागानुगा भक्त' की कृपासे 'मधुर भक्तिरस' की आसक्ति उत्पन्न होती है, तभी रागानुगा भक्तिमें चित्तकी गति होती है। श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरमें ब्रजवासियोंकी जो नित्य भक्ति है, वह वैधी भक्ति नहीं है—वह 'रागात्मिका' है। रागके विभिन्न भेद हैं—किसीमें सखा-भावका राग है, किसीमें वात्सल्य भावका और किसीमें मधुर भावका। इसीसे इन लोगोंकी भक्ति 'रागात्मिका' कहलाती है। इस रागात्मिका भक्तिके अनुगत इसीके अनुसार विभिन्न रागोंके रूपमें जो भक्ति होती है, उसे 'रागानुगा' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि इन महाभाग ब्रजवासियोंके अनुगत होकर भगवान् श्रीब्रजेन्द्रनन्दनकी सेवा प्राप्त करनेके लिये जो श्रवण-कीर्तनादि साधन किये जाते हैं, उन साधनोंको 'रागानुगा भक्ति' कहते हैं। ब्रजवासियोंकी रागात्मिका भक्ति नित्य है और यह रागानुगा साधनारूपा है। ये दोनों ही आसक्तिरूप भक्ति हैं। शेष भगवत्कृपा।

(२)

### पूँजीवाद पश्चिमकी देन है

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि हमारे यहाँ मानवमात्रके लिये चार पुरुषार्थोंका विधान है। वे पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पूँजीवाद, मजदूरवाद आदि वर्ग हैं ही नहीं। सभी मानव आवश्यक अर्थ उपार्जन करें और सभी सेवा करें। सभी संसारमें जीनेके लिये धर्मसम्मत कामका यथावश्यक सेवन करें और सभीका लक्ष्य मोक्ष हो। फिर 'अर्थ और काम' के लिये जीवनका केवल चौथा हिस्सा ही रहे—तीन हिस्से त्यागके रहें। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम हैं।

इनमें एक गृहस्थके सिवा तीनों त्यागके हैं। आजका युग और आजकी पाश्चात्य संस्कृतिका ध्येय है—केवल भोगार्जन तथा भोग-सुख। इसमें त्यागको स्थान नहीं है। यहाँ त्याग भी कहीं होता है तो वह भोग-प्राप्तिके लिये। हमारे यहाँ गृहस्थाश्रममें भोग था, पर वह भी था त्यागमूलक तथा त्यागके लिये ही। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'—हमारी वेदवाणी है। आजका समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, श्रमवाद—सभी इस भोगको आदर्श माननेवाली संस्कृतिकी ही अपवित्र देन हैं। इसीलिये समाजवाद तथा साम्यवादके नामपर पूँजीवादका संगठन होता है और परस्पर वर्ग-संघर्ष तथा कलह-विनाश चलते रहते हैं। भारत भी आज इसी व्यामोहसे ग्रस्त है। जबतक यह व्यामोह नहीं छूटेगा, तबतक विरोध, हिंसा, क्लेश और फलतः दुःख बढ़ेगा ही। असली साम्यवाद है—सबमें एक आत्माको या एक भगवान्को देखकर सबका यथायोग्य सम्मान, हित करना तथा सबको सुख पहुँचाना।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च

ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।

सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं

यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भा० ११।२।४१)

शेष भगवत्कृपा।

(३)

### चराचर प्राणियोंमें भगवान्को देखकर सबका हित करना चाहिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। मनुष्यको अपने विशुद्ध आचार-विचार तथा अपने धर्मके प्रति अवश्य ही परम श्रद्धा रखनी चाहिये, परन्तु दूसरे किसीसे कभी घृणा नहीं करनी चाहिये। द्वेष तो किसीसे भी कभी न करे। सत्य तो यह है कि चराचर समस्त जगत् भगवान्की ही अभिव्यक्ति है। इससे सभी हमारे लिये पूज्य, सेव्य और आदरणीय हैं।

जीव चराचरमें बसे एकमात्र भगवान्।  
उन्हें देख नित कीजिये सबका हित-सम्मान॥  
घृणा-द्वेषका त्याग कर सबसे करिये प्रीति।  
प्रभु-प्रसन्नताकी सुखद यह शुचि सुन्दर रीति॥  
वर्ण-जाति-कुल देशके विविध मतोंके भेद।  
प्रभु-लीला सब, हैं रमे सबमें राम अभेद॥  
रहे भेद बर्तावमें नाम-रूप-अनुसार।  
बना रहे पर नित्य सम सबमें आत्मविचार॥  
मस्तकसे पदतक सभी एक देहके अंग।  
पर उनके व्यवहारमें रहता भेद-प्रसंग॥  
सबका हित-सुख चाहते, सबमें हित सम प्रेम।  
करते सबका ही वहन प्रमुदित योग-क्षेम॥  
इसी तरह सबमें सदा देखें प्रभुका रूप।  
हितकर तन-मन-वचनसे सेवा करें अनप॥

(पद-रत्नाकर १३६८.)

उपर्युक्त दोहोंके अनुसार ब्राह्मण-चाण्डाल, अपना-पराया, हिन्दू-मुसलमान, देशी-विदेशी, मनुष्य-पशु—सभीके साथ निर्दोष तथा यथासाध्य प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हुए सदा सबका यथोचित सम्मान हित-सुख-सम्पादन करना चाहिये। भगवान्‌के इन वचनोंको याद रखे, जो उन्होंने भक्तके लक्षण बतलाते हुए प्रारम्भमें कहे हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः समदःखसखः क्षमी ॥

(गीता १२।१३)

सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित हो, सबके साथ मित्रताका व्यवहार करे, मनमें दया भरी हो, कहीं ममता न हो, किसी बातका अहंकार न हो, अपने दुःख-सुखमें समभाव रहे तथा अपना बुरा करनेवालोंको भी अभयदान देकर उसका भला करे। शेष भगवत्कृपा।

(8)

पापका आदेश किसीका न मानें

प्रिय बहन! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपका भगवान्पर पूर्ण विश्वास है तथा सदा उनकी कृपाकांक्षिणी बने रहना चाहती हूँ, सो बहुत अच्छी बात है। आपने भक्ति तथा भगवान्के नामपर छल-कपट तथा

दुष्कर्म करनेवाले लोगोंके प्रति घृणा होनेकी बात लिखी तो ऐसे लोगोंसे प्रेम तो कैसे होगा ? पर वास्तवमें ऐसे लोग (पुरुष हों या स्त्री) बेचारे पथभ्रष्ट होकर अपने ही हाथों अपना भीषण दुःखमय भविष्य बना रहे हैं, अतएव दयाके पात्र हैं। ऐसे लोगोंके प्रति उपेक्षा करनी चाहिये तथा हो सके तो इनको सदबुद्धि प्राप्त हो और ये पाप-पथका परित्यागकर सत्यपथपर आ जायँ—इसके लिये दयामय भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। घृणा करनी चाहिये पापोंसे, पापीसे नहीं। आपने पूछा कि ‘सासके यदि कर्म ठीक न हों और वह पुत्रवधूको भी उसी मार्गपर ले जाना चाहती हो तो पुत्रवधू क्या करे ?’ सो, ऐसी सासकी भी उसकी विपत्ति-अवस्थामें सेवा करनी ही चाहिये, परंतु उसकी अनुचित बातोंका या अवाञ्छनीय कर्मोंका न तो कभी समर्थन ही करना चाहिये और न उसके बताये मार्गपर चलना ही चाहिये।

कर्म तीन प्रकारसे सम्पन्न होते हैं—कृत (स्वयं करे), कारित (दूसरोंसे कहकर करवाये) और अनुमोदित (कोई करता हो तो उसका समर्थन करे)। अतः यदि कोई पाप करनेके लिये किसीको भी प्रेरणा करता या आदेश देता है तो वह भी पाप करता है और पापका बरा फल उसे अवश्य भोगना पड़ेगा।

बड़ोंकी आज्ञा अधिक-से-अधिक यहाँतक मानी जा सकती है कि जिससे उनको—आज्ञा देनेवालोंको बुरा फल न भोगना पड़े, आज्ञा माननेवालोंकी कुछ हानि हो तो कोई बात नहीं। पर जिस बातमें उनका परिणाममें बुरा होता हो, ऐसी सम्मति या आज्ञा नहीं माननी चाहिये। यह अपराध नहीं है। पापका आदेश किसीका भी नहीं मानना चाहिये। श्रीतुलसीदासजी तो कहते हैं—  
जाके प्रिय न राम-बैदेही।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥  
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।

बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥  
उन 'साधु-वेषधारियों' या 'भक्त-नामधारियों' से  
सदा सावधान रहना चाहिये, जो अनाचार करते हों। वे  
न तो साधु हैं, न भक्त ही। शेष भगवत्कृपा।



सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, आश्विन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा अहोरात्र	मंगल	चित्रा रात्रिमें ४।१९ बजेतक	१३ अक्टूबर	शारदीय नवरात्रारम्भ, तुलाराशि दिनमें ३।४ बजेसे, मातामह श्राद्ध।
प्रतिपदा प्रातः ६।२५ बजेतक	बुध	स्वाती अहोरात्र	१४ "	चन्द्रदर्शन।
द्वितीया दिनमें ८।८ बजेतक	गुरु	स्वाती प्रातः ६।३६ बजेतक	१५ "	वृश्चिकराशि रात्रिमें २।१ बजेसे।
तृतीया " ९।२६ बजेतक	शुक्र	विशाखा दिनमें ८।२९ बजेतक	१६ "	भद्रा रात्रिमें ९।५० बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी " १०।१९ बजेतक	शनि	अनुराधा " ९।५७ बजेतक	१७ "	भद्रा दिनमें १०।१९ बजेतक, उपाङ्गललिताव्रत, मूल दिनमें ९।५७ बजेसे।
पंचमी " १०।४० बजेतक	रवि	ज्येष्ठा " १०।५४ बजेतक	१८ "	धनुराशि दिनमें १०।५४ बजेसे, तुला-संक्रान्ति दिनमें २।१४ बजे।
षष्ठी " १०।२९ बजेतक	सोम	मूल " ११।२१ बजेतक	१९ "	मूल दिनमें ११।२१ बजेतक।
सप्तमी " ९।४८ बजेतक	मंगल	पू० षा० " ११।१७ बजेतक	२० "	भद्रा दिनमें ९।४८ बजेसे रात्रिमें ९।१४ बजेतक, मकरराशि सायं ५।१० बजेसे।
अष्टमी " ८।४१ बजेतक	बुध	उ० षा० " १०।४८ बजेतक	२१ "	श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीदुर्गानवमीव्रत।
नवमी प्रातः ७।११ बजेतक	गुरु	श्रवण " १०।० बजेतक	२२ "	कुम्भराशि रात्रिमें ९।२५ बजेसे, विजयादशमी, पंचकारम्भ रात्रिमें ९।२५ बजे।
दशमी रात्रिशेष ५।२० बजेतक				
एकादशी रात्रिमें ३।१५ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा " ८।४९ बजेतक	२३ "	भद्रा सायं ४।१८ बजेसे रात्रिमें ३।१५ बजेतक, पापाङ्कुशा एकादशीव्रत (स्मार्त)।
द्वादशी " १२।५९ बजेतक	शनि	शतभिषा प्रातः ७।२४ बजेतक	२४ "	मीनराशि रात्रिमें १२।१२ बजेसे, एकादशीव्रत (वैष्णव), सायन वृश्चिक के सूर्य दिनमें १।१३ बजे।
		पू० षा० रात्रिशेष ५।४८ बजेतक		
त्रयोदशी " १०।३७ बजेतक	रवि	उ० भा० रात्रिमें ४।९ बजेतक	२५ "	प्रदोषव्रत, स्वातीका सूर्य प्रातः ६।४४ बजे, मूल रात्रिशेष ४।९ बजेसे।
चतुर्दशी " ८।१३ बजेतक	सोम	रेवती " २।२९ बजेतक	२६ "	भद्रा रात्रिमें ८।१३ बजेसे, मेघराशि रात्रिमें २।२९ बजेसे, शरत्पूर्णिमा, पंचक समाप्त रात्रिमें २।२९ बजे।
पूर्णिमा सायं ५।५३ बजेतक	मंगल	अश्विनी " १२।५३ बजेतक	२७ "	भद्रा दिनमें ७।३ बजेतक, पूर्णिमा, श्रीवाल्मीकि-जयन्ती, मूल रात्रिमें १२।५३ बजेतक।

## कृपानुभूति नीलमणि गोपालकी कृपा

मेरा बचपन लखनऊमें बीता था। मैंने बचपनमें ही श्रीकृष्णभगवान्का एक चित्र खरीदा था, उसे मैंने अपने पढ़नेकी मेजके ऊपर दीवारपर टाँग रखा था। मुझे उनपर कोई विश्वास था, ऐसा मुझे याद नहीं; पर मुझे उनसे कुछ आत्मीयताका-सा भाव रहता था। उस चित्रपर 'मनोहर गोपाल' छपा था, पर मैं उन्हें नीलमणि गोपाल आदि नामोंसे याद करती थी।

मेरे जीवनमें अनेकों उतार-चढ़ाव आये। मुझे याद नहीं कि मैंने गोपालजीसे कुछ माँगा हो, पर मुझे हमेशा इस बातका अहसास रहता था कि गोपालजी मेरे हैं और सदा मेरे साथ हैं। हाँ, कोई भी नया काम शुरू करनेसे पहले (जिस कामको करते समय गलत हो जानेकी आशंका रहती थी) मैं उन्हें अवश्य याद करती थी।

अब मैं एक महत्त्वपूर्ण घटना लिखना चाहती हूँ, जो मेरे जीवनमें घटी है। बचपनसे ही मेरे सिरमें दर्दकी शिकायत रहती थी। सन् १९५३ ई० में शादी हो जानेके बाद सिरदर्द तेज होने लगा। सप्ताहमें एक-दो बार अवश्य ही मुझे तेज दर्द होता था। मैं सिरदर्दकी गोली ले लेती। फिर कुछ समय बाद वह ठीक हो जाता। कुछ वर्षों बाद मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जब भी मुझे चाय पीनेमें देर हो जाती है, मुझे अवश्य ही सिरदर्द हो जाता है। सुबह सात बजेतक और शामको चार बजे मुझे चाय न मिले तो मेरी हालत खराब हो जाती थी। बादमें तो डॉक्टरने बताया कि माइग्रेन है। मुझे उलटियाँ होने लगतीं और सिर फट जायगा, ऐसा लगता। कई बार डॉक्टरोंके पास जाना पड़ता। उन्हीं दिनों मुझे विचार आता था कि हे भगवन्! तुमने मुझे चायका गुलाम बना दिया है। क्या मैं चायकी गुलामीसे मुक्ति नहीं पा सकती? मेरे दो बच्चोंकी शादियाँ हो चुकी थीं। कुछ समय गाँवमें समाजसेवा करने जाती थी और कुछ समय श्रीमद्भागवत-कथा सुननेमें एवं पढ़नेमें लगाती थी। हम लोग मुरादाबादमें रहते थे। अबसे लगभग २० वर्ष पहलेकी बात है, मुरादाबादके पास अमरोहामें संतप्रवर श्रीडोंगरेजी

साथियोंने एक बस तय की, जो सात दिनतक सुबह रोज हमें अमरोहा कथामें ले जाती थी एवं शामको हम वापस आते थे।

कथाके बीचमें एक बार डोंगरेजी महाराजने कहा कि 'तुम संसारी लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह क्या छोड़ोगे, तुम तो चाय, बीड़ी, सिगरेटतक नहीं छोड़ सकते।' सुनकर मुझे लगा कि यह मेरे लिये ही कहा गया है। संयोगकी बात है कि अगले ही वर्ष मुरादाबादमें भी कथा होगी, यह तय हुआ। मैं मनमें बराबर विचार करती रही कि यदि मेरी चाय आगामी कथा होनेतक किसी प्रकार छूट जाय तो मैं बिना चाय पिये डोंगरेजी महाराजकी कथा सुनूँ। १२ सितम्बरसे कथा होनी थी। ५ सितम्बरकी सुबह मैंने चाय नहीं पी, सोचा तबीयत खराब होगी तो हो जाय, आज चाय नहीं पियूँगी। उस दिन सारा दिन मैं इन्तजार करती रही, अब मुझे तेज सिरदर्द होगा, अब उलटियाँ शुरू होंगी, पर शाम चार बजेतक कुछ नहीं हुआ। फिर मैंने शामकी चाय भी नहीं पी और राततक मैं ठीक रही। अब तो मुझे लगने लगा कि बिना चाय पिये कथा सुन सकती हूँ और गोपालजीकी कृपासे ऐसा ही हुआ, मैंने कथा सुनी। शायद पाँच सितम्बर, सन् १९८९ ई० ही था, उसके बाद मैंने कभी चाय नहीं पी। आश्चर्यकी बात यह हुई कि चाय तो मेरी छूट ही गयी, साथ ही गोपालजीकी कृपासे तबसे मेरा माइग्रेन बिलकुल ठीक हो गया। सालमें एकाध बार किसी विशेष कारणसे मामूली सिरदर्द हो जाता है अन्यथा तो मैं ठीक ही हूँ।

जीवनमें दुःख-सुख तो आते-जाते रहते हैं, पर यदि यह विचार बना रहे कि हम उनकी शरणमें हैं, वे जो भी करेंगे, हमारे भलेके लिये ही होगा, तो जीवनकी राह सहज हो जाती है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

—श्रीमती माया गुप्ता

## पढ़ो, समझो और करो

(१)

### विपन्नतामें भी सम्पन्नता

अभी कुछ दिन पूर्व होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) जिलेके सिवनी-मालवाके निकट नर्मदातटपर स्थित चाँदगढ़ आश्रम जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहीं नर्मदा-परिक्रमा कर रहे गुजरातके एक गृहस्थ संतने एक आपबीती घटना सुनायी, जिसमें एक अत्यन्त विपन्न व्यक्तिने उनके सहित आठ-दस परिक्रमा करनेवालोंका भावपूर्ण ढंगसे स्वागत किया था, जबकि एक सर्वविधसम्पन्न व्यक्तिने उन सबको रुकनेसे मना कर दिया था। वस्तुतः इस घटनासे यही प्रमाणित होता है कि सम्पन्नता और विपन्नता हृदयकी उदारतापर निर्भर करती है, न कि संसाधनोंपर। घटना इस प्रकार है—

नर्मदाजीकी परिक्रमा करनेवाले आठ-दस लोगोंकी मण्डली जा रही थी। प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त हो वे लगभग सात-आठ किलोमीटर चल चुके थे कि एक छोटा-सा गाँव दिखायी दिया। गाँवके प्रारम्भमें ही एक पक्का मकान दिखायी दिया, जिसमें एक छोटा-सा मन्दिर और प्रांगण था। मण्डलीकी इच्छा थी कि यहाँ विश्राम करें, भोजन-प्रसादी प्राप्त करें और फिर आगे बढ़ें, किंतु गृहस्वामीने वहाँ रुकनेकी आज्ञा नहीं दी। जब उनसे पूछा गया कि आगे कहीं विश्राम-स्थली है तो उन्होंने गाँवके अन्तमें एक पेड़की ओर इशारा किया। मण्डली जब उस स्थानपर पहुँची तो पासकी झोपड़ीसे एक व्यक्ति बाहर आया और सभीको प्रणाम किया और कहा कि 'मेरा धन्य भाग्य है, जो आप सब आये।' इस बीच मण्डलीके एक सदस्यने कहा कि क्या चायकी व्यवस्था हो सकती है? उस व्यक्तिने तुरंत अपने बालकको आवाज दी और कहा कि आठ-दस लोगोंकी चाय बनानेको अपनी माँसे कहो। बालक वापस लौटकर आया और कहा कि घरमें न शक्कर है और न ही चायकी पत्ती। उसव्यक्तिने अपने पुत्रसे कहा कि एक

थैलेमें पाँच-छः किलो मटर भरो, जो आँगनमें सूख रहे हैं; उसे लेकर दुकानदारके पास जाओ और शक्कर, चायपत्ती लाओ तथा आठ-दस बिस्कुटके पैकेट भी ले आओ। पन्द्रह-बीस मिनटमें ही लोटेमें काली चाय आ गयी और हमें एक-एक पैकेट बिस्कुटका दिया गया। हम लोग यह अंदाजा लगा चुके थे कि उसके घरमें इतने व्यक्तियोंके लिये कप या गिलास नहीं हैं। अतः सबने चाय अपने-अपने गिलासमें लेकर पी और बिस्कुट खाये। उस व्यक्तिकी आँखोंमें जो श्रद्धाभाव था, उससे हम सभी अभिभूत थे। चाय पीनेके साथ सत्संग भी चल रहा था और वह व्यक्ति बड़े भक्तिभावसे हमारी बातें सुन रहा था। लगभग बारह बजे जब हम लोगोंने आगे जानेकी बात कही तो उस व्यक्तिने हाथ जोड़कर कहा कि आप सब लोग यहीं प्रसादी लें तो मुझपर बड़ा उपकार होगा। उसका प्रेम देखकर हम लोग रुक गये। उसने घर जाकर पत्नीको भोजन बनानेको कहा और खुद बाहर जाकर दोना-पत्तल बनाने हेतु पत्ते ले आया और दोना-पत्तल बनाने लगा। शायद घरमें पर्याप्त बर्तन नहीं रहे होंगे। भोजनमें उसने केवल चावल और मटरकी दाल बनवायी, जिसका स्वाद अमृतके समान था।

भोजनके पश्चात् जब वे घर गये तो हम सब लोगोंने दस-बीस रुपये करके अस्सी-सौ रुपये इकट्ठे किये और उस व्यक्ति और उसके बालकको बुलाकर कहा कि नर्मदा माँ तुमपर बहुत कृपा करें। हमारे आशीर्वादके स्वरूप यह छोटी-सी राशि बच्चेकी पुस्तक आदिपर खर्च करना। हमको विदा करते समय उसकी आँखोंमें आँसू थे और हमारा हृदय यह सोचकर भारी था कि माँ नर्मदाने इस भक्तको कैसी प्रेरणा दी कि अत्यन्त अभावग्रस्त होते हुए भी वह हमारी सहायता करनेको तत्पर हो गया। उस व्यक्तिके भाव-भक्तिके आगे लोगोंकी सम्पन्नता बौनी नजर आ रही थी। विपन्न होकर भी वह सम्राट् था।—सुरेशचन्द्र पाराशर

तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्रको लेकर पुनः व्यापार प्रारम्भ किया। भाग्यने साथ दिया। जीवनके अन्तमें ७०-७५ वर्षकी अवस्थामें उनके धन्धेमें चमक आयी। लाख-डेढ़ लाख रुपया हो गया, परंतु उन्होंने अपने घरेलू खर्चोंमें कोई वृद्धि न की। उनके हृदयमें तो उन लोगोंका शेष ऋण चुभता रहता था। नियमानुसार तो कोई अँगुली उठा सकता नहीं था और बहुत-से तो इस बातको भूल भी चुके थे, परंतु उन्होंने कुछ निश्चित

किया और लड़केको एकान्तमें बुलाकर कहा—‘उन पुराने बही-खातोंको थोड़ा ध्यानसे देखो।’

लड़केने बही-खातोंको देखा और क्रुद्ध होकर बोला—‘अब इनका क्या काम है?’ पिताने कहा—‘तू समझा नहीं, हमपर कर्ज है, उसीका हिसाब इसमें देखना है।’

परंतु ये खाते तो सब-के-सब चुकते किये हैं, सबके हस्ताक्षर हैं। अब पहलेका शेष ऋण देने लगें, तब तो फिर वैसी परिस्थिति हो जायगी; क्यों हम जान-बूझकर दुखी होनेका प्रयत्न करें ?

परंतु वृद्धने अपने अन्तःकरणकी इच्छा पूर्ण करनेका निश्चय किया। लड़का घर छोड़कर कहीं चला गया। वृद्धने चिन्ता नहीं की।

एक-एक लेनदारको बुलाकर शेष रुपये देना प्रारम्भ किया। एक ओर देना समाप्त हुआ तो दूसरी ओर तिजोरी खाली हुई। उसने भगवान्‌का उपकार माना— ‘आपने मेरी लज्जा रख ली।’ उस दिन उन्हें जो सुखकी नींद आयी, पहले कभी न आयी थी।

दूसरे दिन वृद्धने पूरा नगर ढूँढ़ा। लड़केका पता नहीं लगा। लड़केका पता लगानेके लिये उन्होंने समाचार-पत्रमें यह समाचार छपाया—

‘चिरंजीव !.....अब तुम्हारा क्रोध शान्त हो गया होगा, भाग्यने साथ दिया है, सब ऋण दे दिया गया है। लाज रह गयी है। पुरुषार्थ करेंगे तो पर्वतोंको भी तोड़ डालेंगे। तुम शान्तिसे विचार करोगे तो तुम्हें लगेगा कि मैंने जो कुछ किया, वह ठीक किया है। इसलिये जो हो गया, उसे भूल जाओ और घर वापस आ जाओ। सबको चिन्ता रहती है, दुःख रहता है।’

और वास्तवमें तीसरे दिन लड़का आकर पिताके चरणोंमें पड़ गया—‘पिताजी! आज संसार पैसेके लिये अन्धा हो रहा है। फिर आपने पैसेके रहनेपर भी जो उपेक्षावृत्ति दिखलायी है, वह अद्भुत है। ऐसे पिताका पुत्र होनेका मुझे गौरव है। मेरी भूलके लिये क्षमा करें।’

पिताने पुत्रके सिरपर हाथ रखा। उनकी आँखोंसे हर्ष और संतोषके आँसू निकल रहे थे।—अखण्ड आनन्द

(३)

## धोबीकी ईमानदारी

बात मार्च, सन् २००६ ई० की है। हर वर्षकी भाँति इस वर्ष भी गुजरातसे ‘मानवता सेठ’ बसन्त पंचमीपर आयोजित पंचदिवसीय फूलडोल-महोत्सवमें भाग लेनेके लिये शाहपुरा ( भीलवाड़ा ) राजस्थान आये थे। यहाँ रामस्नेही-सम्प्रदायका विश्वविख्यात रामद्वारा स्थित है।

उक्त सेठके नौकरने जल्दबाजीमें सेठजीका कुर्ता-पाजामा, धोने एवं इस्त्री करनेके लिये ड्राईक्लीनर्सको दे दिये, किंतु कुर्तेसे सोनेके बटन एवं चैन निकालना भूल गया। अगले दिन प्रातःकाल सेठने नौकरसे कुर्तेमें लगानेके लिये अपने बटन एवं चैन माँगी तो नौकरको याद आया कि वह तो ड्राईक्लीनर्सके यहाँ कुर्तेके संग दे आया। सेठजीको इसके विषयमें बताया और तुरंत ड्राईक्लीनर्सके यहाँ जानेकी अनुमति माँगी, किंतु सेठजीने अपने विश्वस्त नौकरको धैर्य बँधाते हुए कहा कि—

सुं धवै खरी कमाई ना वेला तो मिल जायेगा।

अटला माटे भागवाँ नीं जरूरत ना है॥

यह चेन-बटन तकरीबन एक तोला (१२ ग्राम) सोनेसे निर्मित थे, जिनकी वर्तमान लागत लगभग ३०००० रुपये (तीस हजार रुपये) है। दूसरे दिन ही सायंकालमें ड्राईक्लीनर्सवाले धोबीने कपड़ोंसहित सेठजीके ठहराववाले स्थानपर आकर चेन एवं बटन सेठजीको सुपुर्द करते हुए कहा कि भविष्यमें कपड़ोंकी अच्छी तरह छानबीनकर ही प्रेषित करनेकी कृपा करें, ताकि ऐसी भूल नहीं हो।

सेठजी धोबीकी ईमानदारीसे अभिभूत हो गये एवं प्रसन्न होकर उसे ५०० (पाँच सौ) रुपये ईमानदारीके पुरस्कारके रूपमें देने लगे, किंतु उसने (धोबीने) कहा कि मुझे तो आप सेवाका अवसर इसी तरह प्रदान करते

रहें। बस, इतना ही हमारे लिये पर्याप्त है। यह रुपया पुरस्कार नहीं चाहिये। आज भी वे सेठजी हमारे सम्माननीय ग्राहक हैं। उक्त ड्राईक्लीनर्स मेरे पिताश्री हैं, जिनके ईमानदारीयुक्त जीवनकी छायामें पोषित मैं राजकीय सेवाके उच्च पदपर कार्यरत हूँ।—रीता धोबी

$$(\gamma)$$

## समाजके धनका उपयोग क्यों करूँ ?

उत्तर वियतनामके नेता श्रीहो ची मिन्हका कथन था कि वही व्यक्ति समाजमें सम्मान प्राप्त कर सकता है, जिसकी कथनी करनी एक है। वे आन्दोलनका नेतृत्व करनेवालोंसे कहा करते थे—‘समय एवं धनका सदुपयोग करना चाहिये। हमें समाज एवं देशके धनका दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिये।’

आगे चलकर हो ची मिन्ह वियतनामके राष्ट्रपति बने। सरकारके उच्च अधिकारियोंने उनके लिये एक भव्य बंगला बनवानेकी तैयारी की। उन्होंने सरकारको सूचित किया कि वे जिस साधारण मकानमें रह रहे हैं, उसीमें पूर्ववत् रहते रहेंगे।

एक दिन कुछ विदेशी पत्रकार राष्ट्रपति हो ची मिन्हसे मिलने पहुँचे। उन्होंने उन्हें बाँस-लकड़ीसे बनाये गये साधारण मकानमें बैठे देखा तो वे चकित हो उठे। उनके कक्षमें साधारण कुर्सियाँ एवं एक मेज थी। तडक-भडकका नामोनिशान नहीं था।

अमेरिकी पत्रकारने उनसे कहा—‘अब आप साधारण नेता नहीं, देशके राष्ट्रपति हैं। आपको इस महान् पदकी गरिमाके अनुरूप जीवन-यापन करना चाहिये।’

उन्होंने उत्तर दिया—‘मैं बिना परिश्रमके प्राप्त धनका अपने लिये उपयोग अनैतिक मानता रहा हूँ। तमाम सम्पदाको राष्ट्रकी बताता रहा हूँ। सादगीका जीवन जीनेमें मुझे कोई असुविधा नहीं होती। फिर मैं राष्ट्र एवं समाजके धनका उपयोग क्यों करूँ?’

पत्रकार एक राष्ट्रपतिके ये शब्द सुनकर हतप्रभ रह गया।—शिवकुमार गोयल

## मनन करने योग्य

### श्राद्ध और पिण्डदान अवश्य करें

(१)

श्रीमत् कुलानन्द ब्रह्मचारी महोदयने श्रीश्रीसद्गुरुसंग, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ९०, बैंगला सम्वत् १२९७ ई० के श्रावणकी डायरीमें महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीके निम्नलिखित वृत्तान्तको उद्धृत किया है—‘एक दिन कालीदहके पास यमुनाके किनारे पहुँचते ही एक प्रेत मेरे सामने आकर छटपटाने लगा। मैंने पूछा—‘यों किसलिये कर रहे हैं?’ उसने कहा—‘प्रभु! बचाइये, बचाइये, अब यह क्लेश मुझसे सहा नहीं जाता। सैकड़ों-हजारों बिच्छू मुझे सदा काटते रहते हैं। यन्त्रणासे छटपटाता हुआ मैं दिन-रात दौड़ा करता हूँ। एक घड़ीके लिये भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। आप मेरी रक्षा कीजिये।’ मैंने उससे पूछा—‘यह आपके किस पापका दण्ड है?’ प्रेतने चिल्लाकर रोते हुए कहा—‘प्रभु! यहाँ मैं एक मन्दिरका पुजारी था। भगवान्की सेवाके लिये मुझे जो कुछ धनादि मिलता, उसे सेवामें न लगाकर मैं भोग-विलासमें नष्ट कर देता और दुराचारमें प्रवृत्त रहता था। यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।’ मैंने उससे पूछा—‘आपके इस भोगकी शान्ति कैसे हो सकती है?’ उसने कहा—‘मेरा श्राद्ध नहीं हुआ। श्राद्ध होते ही मेरा यह क्लेश मिट जायगा। आप दया करके मेरे श्राद्धकी व्यवस्था करा दें।’ मैंने फिर पूछा—‘किस प्रकार व्यवस्था करें?’ उसने कहा—‘अपने श्राद्धके लिये मैंने डेढ़ हजार रुपये अपने भतीजेको सौंपे थे, परंतु उसने अबतक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके उसके पाससे वे रुपये मँगवा लें। उनमेंसे कुछ भगवान्की सेवामें लगा दें और शेष रुपयोंसे मेरे कल्याणके लिये श्राद्ध करवा दें।’

मैंने उस मन्दिरके पुजारीके पास जाकर उससे सारी बातें कहीं। फिर उस मृत पुजारीके भतीजेको सब बातें विस्तारपूर्वक बतलायी गयीं। पहले उसने यही सोच रखा था कि इन रुपयोंका किसीको पता नहीं है, कौन पूछेगा। जो कुछ हो, अन्तमें उसने रुपये दे दिये और विधिपूर्वक श्राद्ध

महोत्सव हो गया। इस व्यवस्थासे प्रेतकी यन्त्रणा मिट गयी।

(२)

महात्मा श्रीसंतदास बाबाजीने कहा था कि कई वर्षों पहलेकी बात है, कलकत्ता हाईकोर्टके एक सुप्रसिद्ध न्यायाधीश परलोकवासी हो गये थे। कहा जाता है कि वे जब जीवित थे, तब उनके भोजनमें प्रतिदिन दो मुर्गियोंकी आवश्यकता होती थी। उक्त न्यायाधीश महोदय मरकर प्रेत हुए और असह्य नरकयातना भोगने लगे। उस प्रेतात्माने सहायता पानेके लिये बहुत-से आत्मीय स्वजनोंके सामने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिये, परंतु प्रेतात्माको देखते ही सब लोगोंके डर जानेके कारण वह किसीको अपनी दुःखगाथा नहीं सुना सके। अन्तमें एक धर्मप्राण सज्जन व्यक्तिके सामने प्रकट होकर उन्होंने अपनी क्लेश-कहानी सुनायी। प्रेतात्माने कहा—‘मैं बड़े भारी क्लेशमें हूँ, मुझे मानो सैकड़ों बिच्छू एक साथ काट रहे हों—ऐसी असह्य यातना मैं भोग रहा हूँ। दारुण प्यासके कारण मेरे प्राण छटपटाते रहते हैं, पर मुझको पीनेके लिये जल नहीं दिया जाता, खून दिया जाता है। मेरे नामपर यदि कोई गयाजीमें पिण्ड दे दे तो मेरी यातना मिट सकती है।’ उक्त सज्जन पुरुषने परलोकगत उन न्यायाधीश महोदयके नामसे गयाजीमें पिण्ड दिलवाये। बादमें ज्ञात हुआ कि उनकी यातना शान्त हो गयी।

यद्यपि वे अपने क्षेत्रमें न्यायमूर्ति एवं धर्माधीशके नामसे प्रसिद्ध थे तथापि यहाँके प्रतिष्ठित व्यक्ति होनेके कारण कोई परलोकमें नरक-भोगसे बच जायगा, ऐसा मानना सर्वथा भ्रम है। समस्त न्यायके अधिष्ठाता, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता परमात्माका विधान ही सर्वोपरि है। उसकी दृष्टिमें बड़े-छोटे, धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख आदि सभीके प्रति कोई भेदभाव नहीं है और उनके कर्मोंका परिणाम सर्वथा शुद्ध न्यायके अनुसार होता है तथा प्राणीका भावी जन्म या नरक-स्वर्गादिकी व्यवस्था भी उनके स्वकर्मोंके आधारपर ही होती है।

# गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण ( शारदीय नवरात्र १३ अक्टूबर मंगलवारसे प्रारम्भ होगा )

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1346	श्रीदुर्गासप्तशती सचित्र पाठविधि-सहित—सटीक, मोटा टाइप	४५
876	मूल, गुटका	१५
1346	सानुवाद, मोटा टाइप	३५
1281	सानुवाद ( वि० सं० )	५०
118	सानुवाद, सामान्य टाइप ( गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी )	३०
489	सानुवाद, सजिल्द, गुजराती भी	४५
866	केवल हिन्दी	२०
1161	” ” मोटा टाइप, सजिल्द	५०
दुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरी-चालीसा ( अनेक आकार-प्रकारमें )		

## गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—शक्ति-उपासकोंके लिये कुछ विशिष्ट प्रकाशन

**‘श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण’—[ सचित्र, मूल श्लोक, हिन्दी-व्याख्यासहित ] ( कोड 1897-1898 )**  
**दो खण्डोंमें—** इस महापुराणको ( मूल श्लोक भाषा-टीकासहित )—दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ ४००, केवल हिन्दी ( कोड 1793-1842 )—मूल्य ₹ २००, संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत ( मोटा टाइप ) केवल हिन्दी ( कोड 1133 ) मूल्य ₹ २४०, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी उपलब्ध।

**महाभागवत [ देवीपुराण ] ( कोड 1610 ) हिन्दी-अनुवादसहित—** इस पुराणमें मुख्यरूपसे भगवतीके माहात्म्य एवं लीला-चरित्रका वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें मूल प्रकृतिके गंगा, पार्वती, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती और तुलसीरूपमें की गयी विचित्र लीलाओंके रोचक आख्यान हैं। मूल्य ₹ १२०

**देवीस्तोत्ररत्नाकर ( कोड 1774 ) पुस्तकाकार—** इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹ ३५

**शक्तिपीठ-दर्शन ( कोड 2003 ) पुस्तकाकार—** प्रस्तुत पुस्तकमें भगवतीके ५१ शक्तिपीठोंके इतिहास और रहस्यका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹ २०

## नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये ‘श्रीरामचरितमानस’ के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार ( वि०सं० )	६००	82	श्रीरामचरितमानस—मझला साइज, सटीक, [ बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी ]	१२०
80	” बृहदाकार-सटीक ( सामान्य संस्करण )	५००	1617	” मझला, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित	१३०
1095	” ग्रन्थाकार-सटीक ( वि०सं० ) गुजरातीमें भी	३००	83	” मूलपाठ, ग्रन्थाकार [ गुजराती, ओड़िआ भी ]	१२०
81	” ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड़, अंग्रेजी भी ]	२४०	84	” मूल, मझला साइज [ गुजराती भी ]	७०
1402	” सटीक, ग्रन्थाकार ( सामान्य संस्करण )	१९०	85	” मूल, गुटका [ गुजरातीमें भी ]	४५
1563	” मझला, सटीक ( विशिष्ट संस्करण )	१४०	1544	” मूल गुटका ( विशिष्ट संस्करण )	५०
1436	” मूलपाठ, बृहदाकार	२५०	1349	” सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगमें	२५





**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**  
  
**By**  
**Avinash/Shashi**

**Icreator of**  
**hinduism**  
**server!**



**कल्याण-‘सेवा-अड्डा’ अभी भी उपलब्ध**

‘कल्याण’ के वर्तमान वर्षके विशेषाङ्क ‘सेवा-अङ्क’ के ग्राहक अभी बनाये जा रहे हैं। ग्राहक बननेके इच्छुक महानुभाव निर्धारित रकम शीघ्र भिजवा दें। वी. पी. पी. से भी मँगानेकी सुविधा है। आर्डर भेजते समय पूरा पता, पिन कोडसहित एवं मोबाइल नं० भी अवश्य भेजना चाहिये।

वार्षिक-शुल्क— ₹ २००, ₹ २२० ( सजिल्द )। पञ्चवर्षीय-शुल्क— ₹ १०००, ₹ ११०० ( सजिल्द )

**Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।**

व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’, पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

**नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध**  
**भागवत-नवनीत (कोड 2009)**  
 (संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराजके द्वारा प्रवचनके रूपमें प्रस्तुत श्रीमद्भागवत-कथाओंका अद्भुत संकलन)  
 के एक पृष्ठके टाइप का नमूना, मूल्य ₹१६०  
 (रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंगखर्च ₹३० अतिरिक्त)

## गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

**गीता-दैनन्दिनी ( सन् २०१६ )-की सितम्बर/अक्टूबर माहमें उपलब्धि सम्भावित ।**

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, रचना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-महर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

**पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—**दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ७०

बैंगला—विशिष्ट संस्करण ( कोड 1489 )—, बैंगला—अनुवाद, मूल्य ₹ ७०

**ओडिआ—विशिष्ट संस्करण ( कोड 1644 )—**      ”      ओडिआ—अनुवाद,      मूल्य ₹ ७०

**तेलुगु—विशिष्ट संस्करण ( कोड 1714 )—**      ”      तेलुगु-अनुवाद,      मूल्य ₹ ७०

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ५५

**पॉकेट साइज—** सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ ३०

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।